अरूण कमल एक

लक्ष्मीनारायण लाल

'अरूण कमल एक' का चाणक्य

तीन चाणक्य हैं : विशाखदत्त के 'मुद्राराक्षस' का चाणक्य, डी.एल. राय के चन्द्रगुप्त का चाणक्य, और जयशंकर प्रसाद का चाणक्य। मुद्राराक्षस में वह कोटिल्य है। डी.एल. राय के हाथों वह तेजस्वी, क्रोधी ब्राह्मण है, और प्रसाद की रचना में वह अति स्वाभिमानी और अति भावुक है। कहीं वह प्रतिहिंसक है, कहीं असफल प्रेमी, कहीं व्यवहार–कुशल, नीति–कुशल, कहीं निर्मम, त्यागी ब्राहमण और कहीं विद्वान अध्यापक है चन्द्रगुप्त जैसे महान सम्राट का। संस्कृत में चाणक्य के व्यक्तित्व के बारे में एक यह चित्र खींचा गया है–''जिसमें वज्र और हग्नि के तुल्य तेज है, जिसके वज्र–प्रहार से श्रीयुक्त सुपर्वा नन्द–वंश रूपी पर्वत मूल–सहित नष्ट हो गया, जो शक्ति में कार्तिकेय के समान है और जिसने अपनी मंत्र–शक्ति से एकाकी ही चन्द्रगुप्त को साम्राज्य प्रदान किया।''

मंत्र–शक्ति से निश्च ही ज्ञान–शक्ति का ही अर्थ अभिप्रेत है। वस्तुतः मंत्र–शक्ति, ज्ञान–शक्ति अथवा आयोजन क्षमता की दृष्टि से चाणक्य का चन्द्रगुप्त के लिए उतना ही महत्व था जितना कि सिकंदर के लिए अरस्तू का था। निर्भीक मेधा, स्वच्छ विवके और धैर्य आदि उसके सद्‌गुण थे। पर उसके चरित्र में इतने विस्फोटक तत्व और इतने विरोधाभास हैं कि उसका वही यथार्थ मनुष्य रूप मुझे सदा आकर्षित करता रहा।

चाणक्य को बचपन में, किशोरावस्था में जो अभाव, अपमान और भावनात्मक चोटें मिलीं, वही उसके भावी महापुरूष और उसके चरित्र के प्रेरक तत्व हैं। वही उसके जीवन के वे विस्फोटक तत्व हैं जिन पर उसका भावी चरित्र निर्मित हुआ। साथ ही दूसरी ओर चन्द्रगुप्ता को बचपन और किशोरावस्था में उसके स्तर से जो अपमान, प्रतिहिंसाएं मिलीं, वे भी कम अर्थवान नहीं। यह कैसा मानवीय और ऐतिहासिक संयोग था कि चाणक्य से चन्द्रगुप्त की भेंट गुरू और शिष्य के रूप में हुई।

चाणक्य मूलतः एक यथार्थ पुरूष है। वह गुरू है चन्द्रगुप्त का और साथ ही इतिहास–पुरूष है।

उसी गुरू से यह दृष्टि मिली कि देखो अपने को, अपने परिवेश को, देश–समाज को, सबको। देखता कौन है ? जो कर्ता है। कर्ता कौन है? जो भोक्ता है। भोग क्या है? जो कर्ता भोगता है अपने कर्मो के माध्यम से। पर वह कर्ता बनता कब है? ज बवह सचेतन हो, पूर्ण निष्ठा से अपना कर्म–भोग करता है। अर्थात् जब कर्ता पूर्ण पुरूष होता है। अगर वह पूर्ण पुरूष नहीं है अर्थात् उसमें जब अपने ही कर्मो, भोगों और दायित्वों के प्रति पूर्ण निष्ठा नहीं है तब उसका कर्म भोग नहीं बन सकता। तब वह केवल उपभोग होगा। और उपभोग सदा बंधन रहेगा। यही है गुरू, जो वेद–उपनिषद से चलकर आगे कहीं उपभोग, उपज्ञान, उपकर्मकांड के घनघोर जंगल में लुप्त हो गया।

चाणक्य के चरित्र से, उसी गुरू को पाने और दिखाने का विनम्र प्रयास किया है। यह गुरू मेरे लिए गहन व्यापक अनुभूति है। उसी अनुभूति का नाट्यानुभूति के रूप में दर्शन कराने का मेरा यह प्रयास है।

व्यक्ति एक अभिव्यक्ति है। किसकी, किस चीज की अभिव्यक्ति है यह? भूमा की, ईश्वर की, उस विराट की ही तो अभिव्यक्ति है।

पर मनुष्य अपने जीवन–इतिहास में, परिवेश और समाज में जान कहां पाता है कि वह व्यक्ति अभिव्यक्ति है? वह अपने–आपसे प्रश्न कहां करता है कि वह किसकी अभिव्यक्ति है?

पूरे नाटक में चाणक्य कर्ता है, भोक्ता है, द्रष्टा है, और अन्त में वह मुक्त है। सब कुछ छोड़कर सहज ही चल देता है। बल्कि उसे छोड़ना नहीं पड़ता, सब सहज ही उससे छूट जाता है, उसे अन्त में कुछ बनना नहीं है, वह हो जाता है। वह वही हो जाता है जो उसमें अभिव्यक्त है।

पर यह द्रष्टा होना, देखना बड़ा कठिन कार्य है। तक्षशिला का आचार्य चाणक्य अपने समस्त शिष्यों को आज्ञा देकर बाहर भेजता है कि जाओ, बाहर जाकर देखो। बाहर माने, अपना परिवेश, अपना देश और समाज। बाहर जाते ही उन्हें अपना यथार्थ दिख जाता है। उससे वे सहज ही जुड़ जाते हैं।

आधुनिक शिक्षा की करूणा क्या है? इसकी सीमा और दुर्भाग्य क्या है? छात्र अपनी शिक्षा की परिधि में अपने यथार्थ से कट जाता है। वह टूट जाता है अपने परिवेश, देश और समाज के यथार्थ से। और इससे भी ज्यादा गंभीर बात यह कि वह बाहर जाकर बाहर को नहीं देख पाता, वह अपने आपको ही बाहर पर आरोपित कर देता है।

यहां उस बाहर में उस गुरू के सारे शिष्य हैं, पूरा भारत देश है, उसकी राजनीति, फूट, अलगाव, बिखराव, प्रेम–घृणा, संशय, हिंसा छल–कपट सब कुछ है।

स्न '74में 'गुरू' शीर्षक से इसे पहले मैंने लिखा था। उस रूप को मंच पर देखकर मुझे बड़ा असंतोष हुआ। उसे तत्काल रद्द कर दिया गया। तब से मैं इस विषय पर लगातार सोचता और कार्य करता रहा। उसी का वर्तमान फल है यह नया नाटक–'अरूण कमल एक'।

13 जुलाई, 1984
नयी दिल्ली

–लक्ष्मीनारायण लाल

अरूण कमल एक

पुरूष चरित्र :

चाणक्य : अलक्षेंद्र–कालीन भारत के एक राजनीतिक गुरू तथा विचारक

चंद्रगुप्त : चाणक्य के शिष्य, और अंततः भारत के सम्राट पद को प्राप्त करने वाले मगध के एक राजकुमार

प्रियंवदक : अंग देश के राजकुमार

बंधुल : काशी के राजकुमार

माहालि : मिथिला के राजकुमार

सारंग : इन्द्रप्रस्थ के राजकुमार

सिंहरण : मिथिला के एक अन्य राजकुमार

इंद्रदत्त : केकय (कश्मीर) के अमात्य

शकटार : मगध के महामंत्री, चाणक्य के सहपाठी

फिलिप्स : अलक्षेंद्र के साथ आये यूनानी क्षत्रपों में से एक

परिप्लस : क्षत्रप फिलिप का सेनापति

राक्षस : मगधराज नंद के महामंत्री, वहां से पदच्युत होने के बाद पांचाल नरेश मलयकेतु के महामंत्री, और अंततः पुनः मगध के, सम्राट चंद्रगुप्त के अधीन, महामंत्री

मलयकेतु : पांचाल नरेश, आचार्य राक्षस को, मगध के महामंत्रीपद से च्युत होने के बाद, आश्रय देने वाले राजा

सिद्धार्थक : राजकुमार बंधुल का छद्मनाम, चाणक्य का गुप्तचर

जीवसिद्धि : राजकुमार सिंहरण का छद्मनाम, चाणक्य का गुप्तचर

राजकुमार : राजकुमार नंद, मगधराज नंद के पुत्र

सेठ : चंद्रगुप्त सेठ के भेस में

स्त्री चरित्र :

मदनिका : मगधराज नंद के ज्येष्ठ पुत्र राजकुमार सुमाल्य की प्रेयसी, बाद में चंद्रगुप्त की भी प्रेयसी

कार्नेलिया : अलेक्षेंद्र के सेनापति सेल्यूकस की कन्या तथा चाणक्य के गुरूभाई अकुलश्री की शिष्या, वेद और उपनिषद् में आस्था रखने वाली तथा अंततः सम्राट चंद्रगुप्त की पत्नी, सम्राज्ञी

सिंधुतरी : सिंधुदेश की राजकुमारी, राजकुमार माहालि की प्रेयसी

पहला अंक

पहला दृश्य

स्थान : तक्षशिला।

समय : संध्या।

(गुरूकुल के खुले मैदान को पार कर प्रियंवदक आता है।)

प्रियंवदक : प्रणाम। देखिए, देखिए, इस तरह आशीर्वाद देने की कोई आवश्यकता नहीं। आशीर्वाद तो गुरू का है। लगता है, सबसे पहले मैं ही तक्षशिला गुरूकुल द्वार लौटा हूं। पूरे तीन महीने, तेरह दिन, तीस क्षण, तैंतीस पल, तीन विपल बीते हैं, हमें यहॉ से गये हुए। आज अब तक सबको लौट आना है। सो, मैं प्रथम हूं। पढ़ने में सबसे पीछे हूं तो क्या। आचार्य चाणक्य प्रसन्न रहें, बस, मुझे तो यही आशीष दीजिए। (कंधे से अपना झोला उतारता है।) शतपथ ऋषि के विचार से सुरक्षित विश्राम का स्थान घर ही है। देखिए मेरी स्मरण शक्ति इतनी खराब नहीं है। हां, साधाराण अर्थ में घर–मात्र सुरक्षित विश्राम का स्थान तो है ही किन्तु विशेषकर अपना घर तो सुरक्षित विश्राम का सर्वोत्तम केन्द्र है। अपने घर में भूखों मरकर भी रहने की भावना में दो बातों की ओर खिंचाव्र है–यायावर अवस्था से सर्वथा मुक्त हो जाना। मतलब एक जगह बस जाना। और परमुखापेक्षी न रहना। किसी के आश्रित न रहना, कम से कम निवास के मामले में।

(दूर से सारंग आता है।)

प्रियंवदक : अब देखिए, यह हैं सारंग। इनको नमस्कार करना पड़ेगा। यह राजकुमार हैं। मैं केवल स्नातक हूं। प्रियंवदक का सारंगराव को सादर सविनय प्रणाम स्वीकार हो!

सारंग : बाप रे, चलते–चलते इतना थक गया हूं। (बैठता है।) कहीं एक भी वैसा घर नहीं मिला, जहॉ से कोई कहने वाला हो ... ।

प्रियंवदक : (बीच ही में अभिनय करता हुआ) आइए, आइए, डरिए मत। गायें, बकरी और नाना प्रकार के रसयुक्त अन्य हमारे घरों में भरे हुए हैं।

सारंग : ये घर ऐसे लोगों के हैं ।

प्रियंवदक : चुप रहता है या नहीं ?

(दौड़ा लेता है। सारंगराव चिढ़ाता हुआ)

प्रियंवदक : हम सत्याश्रयी हैं। भाग्यहीन हैं। श्रीसंपन्न हैं .... प्रसन्न हैं। भूख–प्यास की यातना से सर्वथा मुक्त हैं। पधारिए और भय मत कीजिए ... । (दौड़ने और पकड़ने में सारंगराव के दायें पैर में अचानक दर्द उठता है। प्रियंवदक सम्हालता है।)

प्रियंवदक : मैंने सादर प्रणाम किया। आपने ध्यान तक न दिया।

(दायीं ओर से बंधुल आता है।)

प्रियंवदक : अब मैं किसी को प्रणाम नहीं करता।

बंधुल : आचार्य कहॉ हैं ?

सारंग : भाई मेरे, थोड़ा दम तो मार लो।

बंधुल : मुझे अपने अनुभव बताने हैं।

सारंग : हम सबको वही करना है।

बंधुल : मेरा अनुभव तीव्र है।

प्रियंवदक : थोड़ा शीतल जल पी लीजिए।

बंधुल : सारे लोग लौट आये ?

सारंग : भला हम लोग इतने प्रश्न क्यों करते रहते हैं ?

प्रियंवदक : प्रश्न करो। पूछो।

बंधुल : मेरे अनुभव गंभीर हैं।

सारंग : लगता है कहीं प्रेम हो गया।

प्रियंवदक : यात्रा में पेट खराब हो गया दीखता है।

बंधुल : केकयराज पुरू द्वारा गांधार को हारे हुए अभी दिन नहीं हुए हैं कि तक्षशिला पर एक नये ढंग का आक्रमण। हजारों शरणार्थी आ रहे हैं। (बायीं ओर से लंगड़ाते हुए माहालि आता है।)

प्रियंवदक : (उठता है।) मेरी तो नस चढ़ गयी थी। लिच्छवि राजकुमार को।

माहालि : पैर कट गया वीणा के तार से।

बंधुल : शरणार्थी बता रहे थे, दूर यवन देश का कोई अलक्षेंद्र है, उसका आक्रमण हुआ है।

प्रियंवदक : तभी आचार्य चाणक्य कह रहे थे, हम छात्र अपने परिवेश से कट गये हैं।

माहालि : उसी परिवेश से मेरा पैर कट गया।

सारंग : सुनो, सुनो।

बंधुल : तक्षशिला की पौरसभा में विचार हो रहा है। अलेक्षेंद्र अलौकिक वीर है।

प्रियंवदक : चंद्रगुप्त कहॉ है ?

बंधुल : सचमुच हमें अपने आसपास का तनिक भी पता न था। ब्राहमण बौद्ध से लड़ते हैं, बौद्ध जैन से, देवता राक्षस से, आर्य अनार्य से, और केकय गांधार से, सांकल श्रावस्ती से, पूरब पश्चिम से, मध्यदेश तक्षशिला सें।

(दौड़ता हुआ सिंहरण आता है।)

सिंहरण : कृपाण दो। मेरी कृपाण!

बंधुल : सिंहरण!

(सिंहरण तेजी से चला जाता है।)

महालि : मालव कुमार सिंहरण का जैसे कोई पीछा कर रहा हो।

बंधुल : कौन ? कौन खड़ा है उस अंधेरे में ?

माहालि : किसी की परछाई है।

बंधुल : कोई है।

(कृपाण लिए सिंहरण आता है।)

सिंहरण : कायर, भागना नहीं।

(पुष्ठभूमि से हंसी सुनायी पड़ती है।)

सिंहरण : अब भागते क्यों हो ? आओ। कृपाण देखना चाहते थे ? आओ देखो भारतीय अस्त्र–शस्त्र।

(दूर से फिर वही हंसी सुनायी पड़ती है।)

सिंहरण : आज अनुभव हुआ, हंसी एक आक्रमण है।

बंधुल : कौन थे वे ?

सिंहरण : यवन! कितने गर्व से अपने महान विजेता अलक्षेंद्र का नाम ले रहे थे। पंचनद नरेश उन्हें अपने साथ लेकर घूम रहा था। पहली बार उन्हें सिंधु–तट पर देखा। दूसरी बार वितस्ता के अंचल में घोड़े दौड़ाते हुए। तब से मैं जहॉ–जहॉ गया, उन्हें अपने चारों ओर देखा।

(चंद्रगुप्त का आना)

बंधुल : चंद्रगुप्त, बोलते क्यों नहीं ?

माहालि : आचार्य कहॉ हैं ?

सारंग : क्या बात है, कुछ बोलते क्यों नहीं ?

चंद्रगुप्त : अब हमें यहॉ से जाना होगा।

प्रियंवदक : अरे, हम लोगों की शिक्षा का क्या होगा ?

बंधुल : लगता है तुमने भी उस नए तूफान को देख लिया जिसने भारतवर्ष के सारे पाश्चात्य खंड को व्याप्त कर लिया है।

चंद्रगुप्त : हां, हिन्दूकुश पर्वतमाला के पार वह आंधी पहुंच गई है। यहॉ के जनपद इस नई शक्ति के सम्मुख अपनी स्वतंत्रता की रक्षा नहीं कर सकेंगे। आर्य–धर्म और आय–मर्यादा के विनाश को सह सकना मेरी शक्ति में नहीं है।

(सिंहरण के साथ चाणक्य का आना, सारे शिष्यों का प्रणाम करना।)

चाणक्य : अंग देश के राजकुमार प्रियंवदक, इन्द्रप्रस्थ के राजकुमार सारंग, कांशी के राजकुमार बंधुल, मिथिला के राजकुमार माहालि और सिंहरण ध्यान से सुनो। तुम सबको मैंने देश का परिवेश देखने को भेजा था। मैं स्वयं तुम सबके पीछे–पीछे गया था। तुम सबकी इस शिक्षा का समापन हुआ। अब तुम सबको तक्षशिला से बाहर जाना होगा।

प्रियंवदक : हमें क्या करना होगा ?

सारंग : हमारी शिक्षा का क्या होगा ?

चाणक्य : बोलो, चंद्रगुप्ता, हमें क्या करना होगा ?

चंद्रगुप्त : हमें अब राजनीति में भाग लेना होगा।

चाणक्य : राजनीति नहीं, क्रियात्मक राजनीति में भाग लेना होगा।

बंधुल : आप तो क्रियात्मक राजनीति में भाग लेने के विरूद्ध थे, आचार्य ? हमें सदा यही शिक्षा दिया करते थे, प्रत्येक मनुष्य को स्वधर्म में रहना चाहिए।

चाणक्य : मेरी अब भी यही सम्मति है। इसी कारण केकय और गांधार के युद्ध में उदासीन रहा। तक्षशिला के सब आचार्यों और उपाध्यायों को मैंने यही परामर्श दिया ि कवे भी दो जनपदों में सेघर्ष में तटस्थ रहें।

माहालि : अब ऐसी कौन–सी परिस्थिति उत्पन्न हो गई है, जिससे आप अपनी नीति में परिवर्तन कर रहे हैं ?

चाणक्य : अब ऐसा समय आ गया है यदि हमने सक्रिय राजनीति में भाग नहीं लिया तो आर्य–मर्यादा की सत्ता संकट में पड़ जायेगी। तुम सबकों मैंने दिखाया है, भारत के विविध जनपद आपस में संघर्ष करते रहे हैं। प्रत्येक

राजा की यही आकांक्षा रही है कि वह राज्यों को जीतकर सार्वभौम और चक्रवर्ती पद प्राप्त करे। इन अभियानों में न नगरियों का ध्वंस होता था और न अन्य राजकुलों का उच्छेद। किसी तरह से भी लोग शरणार्थी नहीं होते थे। पर यवन देश से जो यह अलक्षेंद्र विश्वविजय के लिए चला है, वह आर्य–मर्यादा का विरोधी है। उससे हम सबको लोहा लेना ही होगा। इस संकटकाल में हमें अपने आश्रमों से बाहर निकलकर सक्रिय राजनीति में प्रवेश करना होगा।

बंधुल : आप हमसे क्या कराना चाहते हैं, आचार्य ?

चाणक्य : विदेशी यवनों से भारतवर्ष की रक्षा करने के लिए हमें देश को एक राजनीतिक संगठन में संगठित करना होगा। छोटे–छोटे जनपदों का युग अब समाप्त हो गया है। शक्तिशाली सम्राटों के मुकाबले में व`अब अपनी स्वतंत्रता की रक्षा नहीं कर सकते।

चंद्रगुप्त : वाहीक देश में इस समय सबसे अधिक शक्तिशाली केकय जनपद है। क्या उसके नेतृत्व में यह कार्य संपन्न किया जा सकता है ?

चाणक्य : नहीं।

चंद्रगुप्त : क्यों ?

चाणक्य : केकय की सेना में केवल केकय जाति के सैनिक हैं। केवल एक जाति के सैनिकों से विशाल साम्राज्य स्थापित नहीं हुआ करते।

चंद्रगुप्त : तो फिर इस महत्वपूर्ण कार्य को कौन संपन्न कर सकेगा ?

चाणक्य : यह कार्य मगध द्वारा संपन्न होगा। संपूर्ण भारतवर्ष में केवल मगध का राज्य ही ऐसा है, जो हिमालय से लेकर समुद्र तक इस विशाल देश में एक सार्वभौम साम्राज्य की स्थापना कर सकता है। मगध के पास विभिन्न जातियों की सेनायें हैं। मगध राज्य के दक्षिण में सैकड़ों योजनों तक जंगल फैला हुआ है, जिसमें बहुत–सी ऐसी जातियॉ निवास करती हैं जिनके रक्त में युद्ध है। मगध में बहुत–से ऐसे लोगों का निवास है, जो अनार्य हैं। वहॉ के निवासी प्रायः वर्णसंकर हैं। इनमें वैयक्तिक स्वतंत्रता की वह परंपरा नहीं है, जो वाहीक, कुरू, पंचाल, कोशल आदि जनपदों में हैं।

चंद्रगुप्त : पर, आचार्य, मगध के राजा तो शूद्र हैं, उनसे आर्य–मर्यादा की रक्षा कैसे संभव होगी ?

चाणक्य : राज्य में राजा तो ध्वजा–मात्र होता है। ध्वजा जिस प्रकार एक भावना का प्रतीक होती है, वैसे ही राजा राज–शक्ति का प्रतीक–मात्र ही होता है।

बंधुल : मगध का राजा न केवल शूद्र है, बल्कि अधार्मिक भी है।

चाणक्य : वहॉ के महामंत्री आचार्य शकटार मेरे सहपाठी हैं। उनके नेतृत्व में मगध की राज–शक्ति का ह्रास संभव नहीं। पर मुझे मगध के राजकुल से कोई मोह नहीं है।

चंद्रगुप्त : मैं मोरियगण की स्वतंत्रता का पुनरूद्धार करना चाहता हूं। पर आपकी योजना में तो गणराज्यों का कोई स्थान ही नहीं है।

चाणक्य : गणों और जनपदों की आंतरिक स्वतंत्रता का मैं पक्षपाती हूं। पर अ बवह समय नहीं रहा, जब भारत में सैकड़ों–हजारों छोटे–छोटे राज्य स्वतंत्र रूप से कायम हैं। अब उन सबकों एक सूत्र में बांधना होगा। एक केंद्रीय शासन की अधीनता स्वीकृत करनी होगी, अन्यथा वे सब विदेशी यवनों द्वारा आक्रांत हो जाएंगे।

चंद्रगुप्त : पर मुझे तो नंदराज द्वारा किए गए मोरियगण के अपमान का बदला लेना है, आचार्य। मेरी माता नंदराज्य में दासी जीवन बिता रही है। मेरे हृदय में यह सदा शूल के समान चुभता रहता है।

चाणक्य : अब तुम सब जाओ। मैं अभी एक–एक से मिलकर कार्यक्रम तैयार करूंगा। चंद्रगुप्त, तुम ठहर जाओ, मुझे सबसे पहले तुम्हीं से बातें करनी हैं।

(सबका जाना।)

चाणक्य : तुम क्या मेरे साथ मगध चल सकोगे ? तुम पाटलिपुत्र को भली–भॉति जानते हो।

चंद्रगुप्त : मुझे क्षमा करें, आचार्य! मैं तक्षशिला में ही रहूंगा। अलक्षेंद्र जब वाहीक देश पर आक्रमण करता हुआ तक्षशिला आयेगा, तब मैं उससे भेंट करूंगा। शायद मैं उसे मगध पर आक्रमण करने के लिए निमंत्रण दे सकूं। जब अलक्षेंद्र द्वारा नंद परास्त हो जाएगा, तभी मेरी आत्मा को शांति मिल सकेगी।

चाणक्य : मैं सब समझता हूं।

चंद्रगुप्त : मैं भी सब समझता हूं, आचार्य।

चाणक्य : तुम्हारे उद्दंड साहस और महत्वाकांक्षा का मैं आदर करता हूं। शायद भविष्य में तुम मेरे उद्देश्य को पूर्ण करने में सहायक हो सको।

(चाणक्य के पुरारने से बंधुल और सारंग का आना।)

चाणक्य : राजकुमार बंधुल और सारंग, तुम्हें मेरे साथ चलना होगा।

दोनों : जो आज्ञा, आचार्य।

दुसरा दृश्य

स्थान : केकय देश की राजधानी, राजगृह।

समय : प्रातःकाल।

(इंद्रदत्त द्वारा चाणक्य का स्वागत करना।)

इंद्रदत्त : आपकी यात्रा की योजना के विषय में सब सुन चुका हूं, आचार्य।

चाणक्य : औशनस नीति के अनुसरण में तुमने कमाल कर दिया है, आमात्य इंद्रदत्त। तुम तो पशु–पक्षियों की भी भाषा समझ लेते हो।

इंद्रदत्त : आपका उद्देश्य सचमुच महान है, आचार्य! संपूर्ण भारत को एक सूत्र में संगठित किये बिना यवनराज के आक्रमण से इस आर्य–भूमि की रक्षा सचमुच नहीं की जा सकती। पर क्या वाहीक देश की वर्तमान परिस्थिति में यह संभव है ? आपको पता ही होगा कि आम्भीक के दूत अलक्षेंद्र से भेंट करने के लिए दौड़े गये हैं। जब अलक्षेंद्र इस आर्य–भूमि पर आक्रमण करेगा तो आम्भीक की सेनायें उसके साथ होंगी।

चाणक्य : आम्भीक वज्रमूर्ख है। मैं उसका भी सदुपयोग करूंगा।

इंद्रदत्त : मंगध राज्य को मर्यादा में स्थापित करना क्या संभव नहीं है, आचार्य ?

चाणक्य : मगध का महामंत्री शकटार मेरा सहपाठी है। शकटार मेरे काम आयेगा। मगध के अतिरिक्त इस आर्य–भूमि में अन्य कोई जनपद अब ऐसा नहीं है जो भारत को एक राजनीतिक सूत्र में संगठित कर सके।

इंद्रदत्त : पर मगधराज नंद शूद्र है। आर्य–मर्यादा का उल्लंघन करने वाला। क्या यह कार्य केकेय को केंद्र बनाकर नहीं संपन्न किया जा सकता, आचार्य ?

चाणक्य : नहीं, नहीं। मगध की सैन्य–शक्ति का मुकाबला केकय नहीं कर सकता।

इंद्रदत्त : पर, आचार्य, एक शूद्र राजा की अधीनता स्वीकार करना क्या वाहीक के आर्य राजकुलों के लिए गौरव की बात होगी ?

चाणक्य : इस आर्य–भूमि को यवनों द्वारा पदाक्रांत होने से बचाने के लिए हमें व्यक्तियों के गर्व की बलि देनी होगी।

इंद्रदत्त : नंद को केंद्र बनाकर आप अपने उद्‌देश्य में सफल होंगे, मुझे इसमें संदेह है।

चाणक्य : यही बात कुमार चंद्रगुप्त ने भी कही थी। पर सुनो, यदि मगध की राज–शक्ति द्वारा भारत को एक सूत्र में संगठित करने के कार्य में नंद सहायक न हुआ तो मैं उसकी बलि दे दूंगा।

इंद्रदत्त : यदि नंद ने आपका साथ न दिया तो क्या आप केकयराज पुरू को इस कार्य के लिए चुनेंगे ? पुरू में शुद्ध आर्य रक्त है, वह अनुपम वीर है। यदि वह संपूर्ण भारत का एकछत्र सम्राट बने तो कितना उत्तम होगा, आचार्य। तब मैं पूर्ण रू‍प से आपके कार्य में सहयोग दे सकूंगा।

चाणक्य : मैं तुम्हारे सहयोग को महत्व देता हूं, इंद्रदत्त।

इंद्रदत्त : मैं सदा आपका अनुगामी रहा हूं, आचार्य। आपका उद्‌देश्य पूर्ण हो यही मेरी हार्दिक कामना है।

चाणक्य : व्यक्ति को समाज के लिए होम कर देना ही आर्यों का आदर्श रहा है। इसी का नाम है यज्ञ। तुम इस संदेश को कठ जनपद तक पहुंचा सको तो बड़ा उपकार होगा। कठ जनपद बहुत छोटा है, पर उसमें जनता की अपार शक्ति है। वहॉ प्रत्येक नागरिक राज–शक्ति का उपभोग करता है फिर भी राज्य का अंग है। यही कारण है बड़े से बड़ा सम्राट भी कठ जनपद की स्वतंत्रता का अपहरण नहीं कर सका।

तीसरा दृश्य

स्थान : श्रावस्ती का भिक्षु–विहार।

समय : तीसरा पहर।

(कुछ युवक भिक्षु स्वाध्याय में लगे दीखते हैं। बंधुल और सारंग का आना।)

बंधुल : आयुष्मान्! टाप लोग क्या पढ़ रहे हैं ?

पहला भिक्षु : हम 'अभिधम्म पिटक' का स्वाध्याय कर रहे हैं।

सारंग : इसके अतिरिक्त आपने कुछ और पढ़ा है ?

दूसरा भिक्षु : हम भिक्षु हैं, पिटकों के अतिरिक्त हमसे और विद्या का क्या संबंध ?

बंधुल : आपकी आयु क्या है ?

पहला भिक्षु : हम दोनों की आयु चौबीस वर्ष है।

सारंग : क्या आप लोगों को काम–वासना कभी उद्विग्न नहीं करती ?

पहला भिक्षु : काम–वासना, हीन, ग्राम्य और अनर्थकर है।

(दोनों का हंस पड़ना। चाणक्य का आना।)

चाणक्य : इनका भिक्षुव्रत कितना हास्यास्पद है! वहीक देश के बाहर, मध्यदेश में यह कैसी अनार्य परंपरा है।

बंधुल : आप इन्हें आर्य–मर्यादा में ला सकेंगे ?

चाणक्य : हां, राजशासन द्वारा।

(दोनों भिक्षु संकेत से कहते हैं, 'आप सब यहां से चले जाइये, विघ्न मत डालिए। सामने से एक मुवती भिक्षुणी आकर खड़ी हो गयी है।)

बंधुल : इनका भिक्षुणी बनना कहां तक उचित है, आचार्य ?

चाणक्य : यह नितांत अनुचित है।

भिक्षुणी : भिक्षु–संघ में इस तरह की भाषा बोलना अनुचित है।

चाणक्य : जो युवती भिक्षुणी बने उसे राज्य की ओर से दंड दिया जाएगा।

(दोनों भिक्षु भिक्षुणी को घेर कर खड़े हो जाते हैं। चाणक्य से बचकर बंधुल और सारंग का हंस पड़ना। दोनों भिक्षु आवेश में आकर आक्रमण करना चाहते हैं।)

चाणक्य : तुम युवक हो भिक्षु नहीं। देखो तुम में कितना काम और क्रोध है ! चलो मेरे साथ सेना में भर्ती हो जाओ।

चौथा दृश्य

स्थान : पाटलिपुत्र, मगधराज महापद्मनंद के विशाल राजप्रासाद का एक कोना।

समय : संध्या।

(चाणक्य अपने दोनों शिष्यों बंधुल और सारंग को साथ लिये हुए एक कोने में छिपे हैं और उन्हें कुछ गुप्त भाषा में समझा रहे है। पृष्ठभूमि में मदनोत्सव मनाये जाने का वातावरण है। एक युवती मदनिका नृत्य करती

हुई आती है, महापद्मनंद उसे पकड़ना चाहते हैं। पर मदिरा–प्रभाव से उन्हें अपने आप पर अधिकार नहीं है। नृत्य करते–करते सहसा मदनिका का नंद पर आक्रमण करना, नंद का घायल होकर गिर जाना, एक अंगरक्षक सैनिक का आना, बंधुल और सारंग द्वारा मदनिका की रक्षा करना।)

चाणक्य : मदनिका, तुमने यह जो कार्य किया है, उसके लिए मैं सदा कृतज्ञ रहूंगा। अब तुम्हें मेरे साथ चलकर एक और कार्य करना है।

मदनिका : क्षमा हो, आचार्य मैं इस राजप्रासाद को छोड़कर कहीं नहीं जा सकती।

चाणक्य : हां, मुझे मालूम है तुम नंद के ज्येष्ठ पुत्र सुमाल्य की प्रेयसी हो। सुमाल्य की प्रेरणा से ही तुमने यह सब किया।

मदनिका : आपको कैसे पता ?

चाणक्य : इसे जानने का अभी समय नहीं है। अगर तुम राजप्रासाद में रही, तो अंतःपुर के सैनिक तुम्हें दुकड़े–टुकड़े कर खतम कर देंगे।

मदनिका : आपके चरणों में गिरती हूं। मेरी महत्वाकांक्षा है कि मेरे प्रियतम सुमाल्य मगध साम्राज्य के राजसिंहासन पर आरूढ़ हों।

चाणक्य : ओह, यह राक्षस की राजनीति है ! तभी तुमने अपनी वेणी में होहे के ऐसे कांटों का प्रयोग किया है जो विष में बुझे हुए हैं। पर तुमने जिसे महापद्मनंद समझकर मारा है, वह शकटार का एक छद्मवेशधारी गुप्तचर है।

मदनिका : यदि असली नंद की मृत्यु के बाद भी शकटार ने इस छद्मवेशधारी व्यक्ति को ही असली सम्राट बनाए रखा, तो मुझे इसे भी समाप्त करना ही था।

चाणक्य : ओह, बड़ी सयानी हो !

मदनिका : मुझे आपका आशीर्वाद मिल गया। देख रही हूं, मेरे प्रियतम मगध के राजसिंहासन पर बैठ चुके हैं। विश्वासघाती शकटार को गिरफ्तार कर बंदीगृह में डाल दिया गया है। राज्यश्री कितनी चंचला होती है, इस बात का इससे बढ़कर उदाहरण और क्या हो सकता है ?

चाणक्य : तुम नहीं जानतीं महामंत्री राक्षस क्या है। तुम्हारे प्रेमी सुमाल्य को भी नंद की तरह भोग–विलास में फंसाकर उसे नष्ट कर देगा। बंदीगृह में पड़ा हुआ शकटार शांत नहीं बैठा रहेगा। और हम सब भी शांत नहीं बैठे रहेंगे। आर्यावर्त पर अलक्षेंद्र का आक्रमण हो चुका है। अश्वक और अश्वाटक जनपदों को जीतकर अलक्षेंद्र की यवन सेनाये पंचनद की ओर बढ़ रही हैं। अलक्षेंद्र के पास अपना दूत भेजकर गांधार राजा आम्भीक संतुष्ट नहीं हुआ है। आम्भीक के आदेश से तक्षशिला की पौरसभा के सदस्य अलक्षेंद्र की अभ्यर्थना करेंगे। दो सप्ताह तक अलक्षेंद्र तक्षशिला में रहेगा, अपनी विजय यात्रा की थकान को मिटाने के लिये और आगे के आक्रमणों की तैयारी के लिये। इसी समय तुम्हें इनके साथ तक्षशिला जाना है और इसी तरह अलक्षेंद्र की हत्या का प्रयत्न करना है।

मदनिका : नहीं, मैं यह नहीं कर सकती।

चाणक्य : ले जाओ इसे।

(सारंग और बंधुल दोनों मदनिका को खींचकर ले जाते हैं।

पॉचवॉ दृश्य

स्थान : पाटलिपुत्र।

समय : दोपहर।

चाणक्य : तो गांधार जनपद ने यवनराज के सम्मुख आत्म–समर्पण कर दिया ?

प्रियंवदक : हॉ, आचार्य।

चाणक्य : मेरा शिष्य आम्भीक इतनी नीचता करेगा, इसकी आशा नहीं थी। (सोचते हुए) पर तक्षशिला की पौरसभा में जो कुलमुख्य हैं, वे क्यों यवनराज के सम्मुख सिर झुका देने को तैयार हो गए? हमारे जो गूढ़पुरूष और सत्त्री तक्षशिला में नियुक्त हैं, उन्होंने पौरों को यवनराज के विरूद्ध विद्रोह करने के लिए प्रेरित क्यों नहीं किया ?

प्रियंवदक : तक्षशिला के कुलमुख्यों में अपना जातीय अभिमान तनिक भी शेष नहीं।

चाणक्य : कहां है चंद्रगुप्त ?

प्रियंवदक : बहुत लज्जित हैं, आपके सम्मुख आने में उन्हें बड़ा संकोच है।

(चाणक्य का चंद्रगुप्त को पुकारना, चंद्रगुप्त का आना।)

चाणक्य : यह क्या बच्चों जैसा ?

चंद्रगुप्त : मोरियगण राजकुमार मैं अलक्षेंद्र से भीख मांगने गया था। मैंने कहा–'मगधराज ने मेरी मातृभमि पर आक्रमण कर उसे अपने अधीन कर लिया है। मेरी माता मगधराज के अंतःपुर में दासी जीवन व्यतीत कर रही है। मैं इस अपमान का प्रतिशोध करना चाहता हूं, यवनराज।'

चाणक्य : अलक्षेंद्र ने तुम्हें क्या उत्तर दिया ?

चंद्रगुप्त : उसने मेरा ही नहीं मेरी माता का भी अपमान किया। उसने कहा, पराजित जनपदों की स्त्रियों के साथ यह व्यवहार उचित है। आचार्य, अब मेरी आंखें खुल गई हैं। आपकी वाणी मेरे कानों में गूंज रही है। यवन सेनाओं की इस विजय से देश का कितना घोर अपमान हुआ। धर्म और संस्कृति का सैसा भयंकर विनाश हुआ। मगध का अपमान मैं सह सकता हूं, पर अपने पुरखों की इस विशाल भूमि के अपमान की कल्पना तक मुझे असहय है। अलक्षेंद्र ने मुझे बंदी बनाने का प्रयत्न किया। मैंने वस्त्र के नीचे छिपाई हुई कटार को तुरंत बाहर निकाल लिया। कटार को घुमाते हुए यवन सैनिकों के बीच में से बाहर चला आया। मैंने कहा–'यवनराज! मैं आचार्य चाणक्य का शिष्य हूं। यदि वह यहां होते तो गांधार की प्रजा तुम्हारी अधीनता कभी स्वीकार नहीं करती।'

चाणक्य : हूं। उसके बाद तुमने क्या किया ?

चंद्रगुप्त : मैं गुप्त भेष में घूमता हुआ सिर्फ देख रहा था।

चाणक्य : तुम्हारे देखने में निराशा थी या अहंकार ?

चंद्रगुप्त : इनसे लड़ता हुआ, देखने का पूरा प्रयत्न कर रहा था।

चाणक्य : क्या देखा ?

चंद्रगुप्त : केकय को परास्त कर, राजा पुरू को अपना मित्र बनाकर, अलक्षेंद्र पूर्व की ओर बढ़ता चला गया। केकय से आगे बढ़कर उसने ग्लुचुकायन गढ़ पर आक्रमण किया। रावी नही के पूर्वी तट पर कठ जाति का गणराज्य था, सांकल इसकी राजधानी थी। उसने सांकल का विध्वंस किया। सांकल को ध्वंस कर अलक्षेंद्र और पूरब की ओर आगे बढ़ा। पर उसका हृदय भयभीत था। उसकी सेनायें विद्रोह के लिये तैयार हो रही थीं। बहुत सोच–विचार के बाद अलक्षेद्र ने निश्चय किया कि विपासा को पारकर और आगे बढ़ना निरर्थक है। उसे ज्ञात था कि वाहीक देश में ही उसे कितने ही गणराज्यों से युद्ध करना होगा। क्षुद्रक, मालव, शिवि, क्षौत्रिय, आग्रेय, आदि को परास्त किये बिना वह सकुशल अपने देश वापस नहीं लौट सकता था।

(अचानक दौड़ी हुई मदनिका आती है। एक सैनिक उसका पीछा कर रहा है। चंद्रगुप्त उसे बचाता है। द्वंद्व–युद्ध कर सैनिक को खदेड़ देता है।)

चाणक्य : मदनिका, तुम यहां ?

मदनिका : मैं आपके शिष्यों के साथ नहीं गई। मेरे लिए पाटलिपुत्र का यह प्रासाद महत्वपूर्ण है।

चाणक्य : बस, बस, आगे और कुछ बोलने की आवश्यकता नहीं। चंद्रगुप्त, तुम इसे अपने साथ ले जाओ और इसके प्रेमी सुमाल्य नंद को इसे दिखाओ।

चंद्रगुप्त : जो आज्ञा।

चाणक्य : सुनो ! यह बड़ी गुणवान है। इसका सदुपयोग करो।

(चंद्रगुप्त के साथ मदनिका का जाना।)

चाणक्य : प्रियंवदक, चलो हम अपने रूप बदलकर वहां पहुंचते हैं, जहां वह सुरंग खोदी जा रही है।

प्रियंवदक : इस भेष में यहां से बाहर निकलना खतरनाक है। हमारे चारों ओर राक्षस ने गुप्तचर लगा रखे हैं।

चाणक्य : लगता है, तुम यहां आकर औशनस नीति को एकदम भूल गये हो।

(चाणक्य अपने चलने का ढंग बदल लेते हैं, तदनुसार प्रियंवदक उसका अनुसरण करता है। दोनों बाहर जाते हैं।)

छठा दृश्य

स्थान : शकटार का बंदीगृह।

समय : रात का पिछला पहर।

(शकटार सोया पड़ा है, सुरंग के रास्ते से चाणक्य का आना। शकटार को छूकर जगाना।)

शटकार : (आश्चर्य से) विष्णुगुप्त, तुम ?

चाणक्य : अब विष्णुगुप्त नहीं, चाणक्य!

शकटार : पर तुम यहां कैसे ?

(चाणक्य का इशारा करना और दोनों का वहां से चलकर बाहर आ जाना। बाहर प्रियंवदक तापस के भेष में खड़ा है। इन दोनों को भी तापस का वस्त्र देना। अब तीनों तापस–भेष में।)

शकटार : यहां रहते हुए हम राक्षस की निगाह से कैसे बच सकते हैं ?

चाणक्य : मेरी योजना है, मैं गुरू के रूप में भगवान अश्विन् के मन्दिर में निवास करूंगा। तुम और प्रियंवदक मेरे चेले बनकर रहोगे। लोग हमारे दर्शनों को आएंगे। जो हमारे पुराने साथी हैं, जिन पर हमारा पूरा विश्वास है, उनको कहना, 'गुरू महाराज से दीक्षा लेने के लिए सूर्योदय से पहले ही आकर मिलो।'

शकटार : पर इससे क्या होगा?

चाणक्य : पहले हमें नंद राजकुल का अंत करना होगा। किसी उचित व्यक्ति को मगध के राजसिंहासन पर बैठाना होगा और इस सारे कुचक्र का अंत करना होगा।

शकटार : पर यह सब होगा किस प्रकार ?

चाणक्य : चंद्रगुप्त मगध की सेना में असंतोष उत्पन्न करेगा। निराश मदनिका द्वारा सुमाल्यनंद की हत्या होगी। हम धन के जोर से मगध की सेना को अपने पक्ष में कर लेंगे।

शकटार : पर हमारे पास इतना धन आएगा कहां से ?

चाणक्य : मगध की सेना में जो मौल सैनिक हैं, उन्हें हम यह कर अपने पक्ष में कर लेंगे कि सुमाल्यनंद शूद्र है।

शकटार : इसके लिये हमें पाटलिपुत्र के श्रेष्ठियों को अपने पक्ष में करना होगा। पर इसके लिए हमें धन की आवश्यकता होगी।

चाणक्य : हमें दो उपाय कराने होंगे, जाली सिक्के बनाना और देव–प्रतिमाओं के दर्शन कराकर धन एकत्र करना होगा।

(इस बीच विभिन्न भेषों में गुप्तचर वहां आते रहे हैं। उन्हें देखते ही इनकी भाषा और आचरण में तदनुसार परिवर्तन होता रहता है।)

चाणक्य : कल जब श्रद्धालु गृहस्थ इस मन्दिर में पूजा करने आएंगे, मैं समाधि लगाकर यहां बैठ जाऊंगा। जब श्रद्धालु गृहस्थ मेरे पास आएंगे तो मैं आंखें बंद किये कहूंगा : मुझे भगवान वैश्रवण ने दर्शन दिये हैं। उनकी एक प्रतिमा वहां दबी पड़ी है। भगवान का आदेश है कि उस प्रतिमा का उद्धार करो और वहां एक मन्दिर की स्थापना करो। वैश्रवण की मूर्ति वहां रात को ही गाड़ दी जाएगी। वैश्रवण धन के देवता हैं, शकटार। पाटलिपुत्र के श्रेष्ठी उनकी मूर्ति को प्रतिष्ठापित करने के लिए दिल खोलकर धन देंगे। बात–की–बात में लाखों सुवर्ण, निष्क वैश्रवण के मन्दिर के लिए एकत्र हो जाएंगे।

शकटार : यह तो धोखा है।

चाणक्य : उद्देश्य महान है। उसकी पूर्ति के लिए हीन साधनों के अवलंबन में मुझे कोई संकोच नहीं। गृहस्थों का कोटि–कोटि धन जो इन निरर्थक विहारों और मठों में खर्च हो रहा है, वह क्या अधर्म नहीं है ? विलासी सुमाल्यनंद के हाथों मगध के राजकोष का धन पानी की तरह बह रहा है। रूपाजीवाएं नंद के सुवर्ण प्राप्त करती हैं और उससे ताम्बे के कार्षापण खरीदती हैं, क्योंकि बाजार में तो कार्षापण ही चलते हैं न ? हम जाली कार्षापण बनाएंगे और उनसे सुवर्ण प्राप्त करेंगे।

शकटार : यह तो बहुत अनुचित होगा।

चाणक्य : तुम अब भी उचित–अनुचित की बात सोचते हो, शकटार ?

शकटार : मेरे लिए इस अश्विन् के मंदिर में रह सकना असंभव है। मगधराज के सैनिक और गुप्तचर मेरी खोज में तत्पर हैं।

चाणक्य : लो दर्पण में अपने चेहरे को देखो। इस भेष में शकटार को कोई नहीं पहचान सकता।

(योजनानुसार चाणक्य का समाधिस्थ होना, शकटार और प्रियंवदक का गुरू की सेवा में तत्पर हो जाना। दूसरी ओर दो गुप्तचर परस्पर बातें कर रहे हैं।)

पहला गु0 : तुमने ध्यान से देखा, इन गुरू–चलों में कोई शकटार तो नहीं ? ऊंचा माथा, लंबी नाक से शकटार को आसानी से पहचाना जा सकता है।

दूसरा गु0 : अरे, मुझे तो उस चाणक्य की चिंता है। पता नहीं वह कहां छिपा हुआ है। वही सब उपद्रवों की जड़ है।

पहला गु0 : वह चंद्रगुप्त भी तो यहीं कहीं आकर छिपा है।

दूसरा गु0 : पाटलिपुत्र के सब पान्थागार, मन्दिर, मठ और विहार भी हमने छान डाले, पर कहीं कोई निशान नहीं।

पहला गु0 : पता नहीं इन तीनों को जैसे जमीन निगल गई या आकाश में कहीं समा गये, बदमाश, लुच्चे, हमारी नींद खराब कर रही है।

दूसरा गु0 : मुझे तो लगता है कि यही मन्दिर ही सारे षड्यत्रों के केन्द्र है।

(पहला गुप्तचर प्रियंवदक को बुलाता है। दूसरा उसे बड़े ध्यान से देखता है।)

पहला गु0 : तेरा नाम क्या है रे ?

प्रियंवदक : तापसी।

दूसरा गु0 : लपसी ?

(दोनों हंसनं लगते हैं।)

पहला गु0 : तेरी आयु कितनी है रे ?

प्रियंवदक : मुझे पता नहीं।

दूसरा गु0 : तेरी शादी हुई हैं ?

प्रियंवदक : तापस विवाह नहीं करते।

पहला गु0 : अरे, चल हम तेरी शादी कराते हैं।

दूसरा गु0 : बड़ी रूपवती कन्या है।

पहला गु0 : उसका नाम क्या है ?

दूसरा गु0 : हम नाम–धाम नहीं जानते।

पहला गु0 : अरे, जो भी हो उसे यहां भेज दो। वह एक योगिनी का भेष बनाए मन्दिर में जाकर आसन जमाए। जो यहां आएगा वह उसके नयन वाणों से नहीं बच सकता।

(पृष्ठभूमि में शोर होता है। लोग दौड़–भाग रहे हैं। एक–दूसरे से कह रहे हैं, 'किसी विषकन्या ने सुमाल्यनंद की हत्या कर दी है पर राज्य की तरफ से मदनिका का नाम लिया जा रहा है।' दोनों गुप्तचर भागते हैं। मदनिका योगिनी का भेष बनाए मन्दिर के सामने बैठ जाती है। चाणक्य उसके पास आकर।)

चाणक्य : भगवान अश्विन् का आशीर्वाद। चंद्रगुप्त कहां है ?

मदनिका : उनके कौशल पर भरोसा रखिए, आचार्य।

चाणक्य : वह विषकन्या कौन थी ?

मदनिका : सुना है, वह विषकन्या आपकी भेजी हुई थी।

(चाणक्य 'शिव, शिव' कहते हुए फिर समाधि लगाकर बैठ जाते हैं। पृष्ठभूमि में फिर शोर उठता है, जैसे युद्ध शुरू हो गया है।)

म्दनिका : सैनिकों में विद्रोह हो गया है। खाली राजसिंहासन के लिए नंदपुत्रों में लड़ाई शुरू हो गई है। चंद्रगुप्त सबकों परास्त करेगा।

(शकटार, प्रियंवदक और मदनिका तीनों दौड़ते हैं। चाणक्य उन्हें रोकते हुए।)

चाणक्य : नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। कहीं कोई लड़ाई शून्य में नहीं लड़ी जा सकती। रूको, मेरी बात सुनो। शकटार, तुम्हें यहां से नहीं जाना है।

(चाणक्य दौड़कर शकटार को पकड़ लेते हैं। प्रियंवदक और मदनिका दोनों 'चंद्रगुप्त की जय, चंद्रगुप्त की जय करते हुए दौड़ जाते हैं। सारे दृश्य पर कोलाहल छा जाता है। क्षण–भर के लिए दृश्य पर अंधेरा। फिर प्रकाश लौटता है। मदनिका और प्रियंवदक के साथ चंद्रगुप्त का आना।)

चंद्रगुप्त : क्षमा हो, आचार्य। मैं युद्ध में पराजित हुआ।

चाणक्य : यही है आवेश का फल। दुःखी, महत्वाकांक्षी, घमण्डी चंद्रगुप्त, तुमने नंद के अंतःपुर में दासी जीवन व्यतीत करती हुई अपनी मां को भी नहीं मुक्ति दिला सके। जानते हो क्यों ? जिसका हृदय क्रोध और प्रतिक्रिया से भरा हुआ है, उसे कोई सफलता मिल सके, यह असंभव है।

चंद्रगुप्त : राजा नंद के अतःपुर में दासी का जीवन व्यतीत करती हुई मेरी मां, मैं इसे कभी नहीं सहन कर सका। मेरा हृदय क्रोध और निराशा की लपटों में झुलस रहा है।

चाणक्य : केवल तुम्हारी मां या भारत माता ?

(चंद्रगुप्त का चाणक्य को देखते रह जाना।)

चाणक्य : ध्यान से सुनो। नंद को परास्त करने से पहले सीमांत प्रदेशों को अपने अधीन करना होगा। अलक्षेंद्र के आक्रमणों के कारण वाहीक देश के विविध जनपद इस समय अस्त–व्यस्त दशा में हैं। उन्हें यवनराज के विरूद्ध करने के लिए प्रेरित करना होगा। जब वे स्वतंत्र हो जाएं, तो उन्हें एक सूत्र में संगठित कर सबकी सम्मिलित शक्ति से मगध की सत्ता को प्राप्त किया जा सकता है।

(चंद्रगुप्त का चाणक्य के पैरों पर गिर पड़ना। चाणक्य उसे उठाते हुए।)

चाणक्य : देखो, भारतवर्ष एक अधखिले अरूण कमल जैसा है। प्रश्न करो, इस अरूण कमल को कौन नहीं खिलने देता ? वे कौन–सी शक्तियां हैं, जो इसे खिलने से रोकती हैं, जो इसे खिलने से रोकती हैं ? सुनो, सबसे प्रचण्ड शक्ति राजसत्ता की है। इस समय राजसत्ता, कमल की एक–एक पंखुड़ी की तरह बिखरी हुई है। इस अधखिले, अरूण कमल को एक संपूर्ण कमल में रूपांतरित कर दें। सुनो, मैं अब स्वयं तक्षशिला जाऊंगा। छिपकर नहीं, अपने असली रूप में। तक्षशिला में मेरे जितने भी विद्यार्थी हैं, उन सबकी सहायता से एक बहुत बड़ी सेना खड़ी करूंगा। गुरूकुल के अध्यापकों को प्रेरित करूंगा कि देश में सर्वत्र फैल जाओ, जनता में नवजीवन के उद्‌बोधन के लिए, दैन्य पराजय और निराशा के विरूद्ध प्रजा लोक में विद्रोह का प्रादुर्भाव करने के लिए।

दूसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान : तक्षशिला।

समय : प्रातःकाल।

(चाणक्य के सामने शिष्यगण।)

चाणक्य : वह विद्या किस काम की, जो अर्थकरी न हो, वह ज्ञान निरर्थक है जो विमुक्ति न दे। इसलिए अब वह समय आ गया है, जब तुम अपने पोथी–पत्रों को संभालकर रख दो और आर्य–भूमि पर शासन कर रही विदेशी यवन शक्ति से युद्ध करने के लिए निकल पड़ो। हमारी आपस की फूट और निर्बलता के कारण ही इस देश के लोग दाय जीवन व्यतीत करने के लिए विवश हुए। पर स्मरण रखो, आर्य कभी दास बनकर नहीं रह सकते। उठो, संकल्प लो, हम यवनों को वाहीक देश से बाहर निकाल देंगे और इस आर्यावर्त के गौरव की पुनः स्थापना करेंगे।

(सारे विद्यार्थी एक स्वर में कह उठते हैं–''हम सब तैयार हैं।'')

चाणक्य : यह कार्य सुगम नहीं। यह ऐसा कार्य है जैसे आग के साथ खेलना।

(सारी शिष्य मंडली का एक स्वर में कहना–''हम सब तैयार हैं।'')

चाणक्य : हमस ब मिलकर रण–क्षेत्र में उतर पड़ें। जो काम गांधार और केकय के क्षत्रियों को करना चाहिए था, वह हम करेंगे। तुम सब गांधार, केकय, मद्रक, कठ, शिवि, क्षुद्रक, मालव, वाहीक आदि जनपदों में फैल जाओ। वहां जाकर जनता को उसकी दुर्दशा का बोध कराओ। लोगों को बताओ कि दास–जीवन पशु जीवन है, मनुष्य का नहीं।

एक शिष्य : यदि हमारे सामने यवन सैनिक आ जाएं तो हम क्या करेंगे ? हमें निश्चित निर्देश मिलना चाहिए।

चाणक्य : तुम्हें परिस्थिति अनुसार स्वयं निर्णय लेकर कार्य करना होगा। स्मरण रखो, बलिदान के बिना स्वतंत्रता कभी नहीं हासिल की जा सकती।

(माहालि आम्भीक को पकड़े हुए ले आता है। उसे देखते ही सारे शिष्य आवेश में आ जाते हैं।)

पहला शिष्य : इस देशद्रोही को समाप्त कर दो।

दूसरा शिष्य : इसे रस्सियों से बांधकर तक्षशिला के राजमार्ग पर जुलूस बनाकर चल पड़ें।

तीसरा शिष्य : इसके मुख पर कालिख पोतकर, इसे गधे पर बैठाकर।

(शिष्य घेर लेते हैं। चाणक्य उसे बचाते हुए।)

चाणक्य : यह क्या करते हो ? यह देशद्रोही है, पर कायर नहीं है।

पहला शिष्य : जो कायर है, वही देशद्रोही हो सकता है।

(शिष्य उसे मारने के लिए दौड़ते हैं। चाणक्य सबको शांत करते हुए उसकी रक्षा करते हैं। तभी बंधुल का दौड़ते हुए प्रवेश। सब शांत हो जाते हैं।)

बंधुल : आचार्य! राजगृह की जनता में यवनों के विरूद्ध असंतोष फैल गया है। लोग सोचने लगे हैं कि इस देश में यवों की सत्ता असहय है। जगह–जगह देवताओं के मन्दिरों में जो प्रकोप हो रहे हैं, उसके बारे में लोगों का विश्वास है कि यवनों की सत्ता का अंत करके ही देवताओं के प्रकोप को शांत किया जा सकता है।

चाणक्य : क्षत्रप फिलिप्स के क्या समाचार हैं ?

बंधुल : जब क्षत्रप फिलिप्स को ज्ञात हुआ कि राजगृह में विद्रोह के लक्षण प्रकट हो रहे हैं, तो उसने सेनापति परिप्लस को बुलाया और आज्ञा दी कि तक्षशिला का कोई भी छात्र कहीं भी मिले, उसे बंदी बनाकर मेरे पास लाओ। और उसका आचार्य, चाणक्य किसी भी हालत में अब और जिन्दा रहने का अधिकारी नहीं है। यदि एक सप्ताह के भीतर ऐसा नहीं हुआ और जनता ने विद्रोह किया, तो हम राजगृह को भस्म कर देंगे।

चाणक्य : सब समझ गया। सफलता मिलने लगी।

(चाणक्य संकेत करते हैं। सारे शिष्य इस तरह घिर जाते है जैसे मधुमक्खी का एक छत्ता हो जिसके बीच में चाणक्य अदृश्य है।)

दूसरा दृश्य

स्थान : पाटलिपुत्र का दासहट्ट।

समय : दोपहर।

(दासहट्ट में भीड़। विक्रय के लिए लाये गए दास–दासियों को देखने के लिए नागरिक एकत्र हैं। चंद्रगुप्त एक स्थूलकाय सेठ का रूप बनाकर लोगों के सामने छद्मरूप में मदनिका को दासी बनाकर दिखा–दिखाकर कहता है।)

सेठ : देखो, यह माल, यह पण्य देखो। अंग–बंग और मगध–भर में ऐसा माल कहीं नहीं मिलेगा। देखो, इस दासी को देखो। कैसी रूप–यौवन संपन्न है। हाय हाय! चंद जैसा मुखड़ा, काली घटा जैसे केश, साक्षात् रति की प्रतिमा, हा हा ! दासी, आगे बढ़ो मुंह ऊपर को उठाओ। नागरिकों, देखो, इसका मुख चंद्रमा को मात करता है या नहीं ? इसके पैर ? कदली स्तम्भ हैं या कुछ और ?

(पृष्ठभूमि में कोलाहल होता है। राजकुमार नंद का दासहट्ट में आना, लो भयभीत इधर–उधर सिमट जाते हैं। राजकुमार नंद के अंगरक्षक लोगों को दूर हटाते हैं।)

राजकुमार : कहां है वह रूप–यौवना दासी ? देखूं तो भला।

सेठ : यह है, महाराज। इधर इधर यहां।

राजकुमार : कहां है वह साक्षात् रति की प्रतिमा ?

सेठ : अरे इधर देखिए, महाराज। महाराज, इधर।

राजकुमार : मुझे तो कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा।

सेठ : आगे बढ़ो, मुंह ऊपर उठाओ। महाराज, यह देखिए।

राजकुमार : हाय हाय ! नाचना जानती है ?

सेठ : जानती है।

राजकुमार : संगीत में प्रवीण है ?

सेठ : जी, महाराज।

(राजकुमार दासी के शरीर के विभिन्न अंगों को छूकर देखता है।)

राजकुमार : माल तो बुरा नहीं है। इसका दाम क्या है ?

सेठ : केवल पांच सौ निष्क।

राजकुमार : केवल पांच सौ निष्क ? ऐ, इसे पांच हजार निष्क दे दो। माल कमाल का है।

(अंगरक्षक निष्क निकालकर देता है। सेठ उसे देखकर।)

सेठ : ये सारे के सारे निष्क नकली हैं।

राजकुमार : क्या कहा ? नकली निष्क ?

(लोग दौड़कर आते है और निष्कों को देखकर आपस में कहने लगते हैं 'यह मुद्रा तो नकली है, निष्क नकली हैं'।)

राजकुमार : यह नकली मुद्रा कहां से आयी ?

सब : हमें पता नहीं, महाराज।

एक : पाटलिपुत्र में नकली धन की बाढ़ आ गयी है, महाराज।

दूसरा : सारा हट्ट जाली कार्षापणों से भर गया महाराज।

राजकुमार : ऐसे कैसे हुआ ? क्यों सुन्दरी ? क्यों रे सेठ ? कैसा तेरा पेट ?

(विनोद।)

पहला : पाटलिपुत्र की रूपाजीवाएं महाराज से सुवर्ण प्राप्त करती हैं और उससे ताम्बे के कार्षापण खरीदती हैं, क्योंकि बाजार में तो कार्षापण ही चलते हैं।

दूसरा : हमने सुना है, महाराज, चाणक्य ने असंख्य जाली कार्षापण बनाए हैं और उनसे सुवर्ण बटोर लिया है।

(राजकुमार नंद गुस्से में, वहां उपस्थित लोगों को मारने लगता है, और हंसता हुआ अंग–रक्षकों के साथ वहां से चला जाता है। तभी वहां दो यवन सैनिक आते हैं। दोनों दासी के रूप को निहारते रह जाते हैं।)

पहला : यह तो बहुत बेशकीमती माल है।

दूसरा : इसका कितना दाम है ?

सेठ : पांच सौ निष्क।

दोनों : ठीक है, हमने इसे खरीदा।

सेठ : ये हैं पण्य के असली पारखी !

दासी : कौन लोग हैं ?

सेठ : यवन सेनापति के लोग हैं।

दासी : ठीक है, तो चलो।

सेठ : क्यों भाई, दासी को लेकर मैं यवन स्कंधावार मे चलूं, आपको कोई आपत्ति तो नहीं होगी ?

पहला : ऐसा माल, कमाल, चलो, जरूर चलो।

(सबका चलना और यवन स्कंधावार में पहुंच जाना। दृश्य में सेनापति परिप्लस के साथ क्षत्रप फिलिप्स का दिखना। दोनों सैनिक सेनापति से कुछ कहते हैं। सेनापति क्षत्रप से कुछ कहता है।)

फिलिप्स : दिखाओ, दासी कैसी है ?

(सेठ दासी को लेकर आता है। सेठ क्षत्रप फिलिप्स को जमीन पर लेटकर प्रणाम करता है।)

सेठ : देखिए क्षत्रप, मेरा पण्य देखिए। संपूर्ण देश में इससे अधिक सुंदरी दासी यदि कहीं मिल जाए तो अपना सिर काटकर आपके चरणों में पेश कर दूं। दासी, यवनराज को अपना अंग तो दिखाओ। यही असली पारखी हैं।

(दासी तरह–तरह से अपने अंग दिखाती है।)

सेठ : हाय! हाय! बस रे बस! बस।

फिलिप्स : यह कोई कला भी जानती है ?

सेठ : यवनराज को अपना नृत्य दिखाओ।

(दासी का नर्तन। फिलिप्स मदमस्त हो जाता है।)

सेठ : महाराज, नंगी तलवार को मुंह में लेकर जब यह नृत्य करने लगती है तो ऐसा दृश्य उपस्थित होता है कि जो आपने कभी नहीं देखा होगा। चांद चमक उठता है। जिस्म में आग लग जाती है।

फिलिप्स : सेनापति परिप्लस, तलवार को मुंह में लेकर नाचना, ऐसा तो हमने कभी नहीं देखा। गजब है।

परिप्लस : हुजूर, अपनी आंखों से देख लेते हैं।

सेठ : हम लोग अस्त्र–शस्त्र की कदर क्या जानें ? हमें तो नंगी तलवार देखते ही डर लगने लगता है। आप अपनी तलवार दे दें, सेनापति! फिर देखिए, इसका नाचना।

(सेनापति अपनी तलवार दासी को दे देता है। दायी नंगी तलवार को मुंह से पकड़कर नृत्य शुरू करती है।)

सेठ : वाह, वाह। कैसा अद्‌भूत नृत्य है। देखिए, महाराज इसके पैरों का संचालन। इसके हाव–भाव इसकी आंखें। इसकी अदायें। हाय हाय!

(दासी के नृत्य को देखकर क्षत्रप और सेनापति दोनों मंत्रमुग्ध हो जाते है। नृत्य के बीच में एकाएक दासी बिजली–सी चमक उठती है और फिलिप्स की हत्या करती है। सेठ सेनापति की हत्या करता है।)

तीसरा दृश्य

स्थान : पाटलिपुत्र का उपवन।

समय : दिन का तीसरा पहर।

(माहालि बैठा रो रहा है। सारंग धोती लिए खड़ा है। धोती को पकड़े माहालि उससे अपने आंसू पोंछता है।)

सरंग : हे! जल्दी–जल्दी आंसू बहा लो। वह आ रही होगी। बस, पहुंचने को है। भला उसका नाम क्या है ? ओह! च च च! नाम नहीं पता ? अरे, उसका नाम है सिंधुतरी।

महालि : सिंधुतरी! सिंधुतरी।

सरंग : हां, सिंधुतरी। तुम्हारे आंसुओं में वह नौका है, सिंधुतरी। कितना सुन्दर नाम है। कितना अच्छा संयोग। तुम आंसुओं के सिंधु, वह तरी।

(दूसरी ओर प्रियंवदक रथ पर बैठाये सिंधुतरी को ले आने का अभिनय करता हुआ ले आता है।)

प्रियंवदक : आह! हम पहुंच गये। हम आचार्य के कहने से अपने देश, काल, समाज का परिवेश क्या देखने गये, कि देखते ही जा रहे हैं। देवी, आप यहां बैठें। मैं उस विरही को ढूंढ़ लाता हूं। (रूककर) देवी, हमें क्षमा करें, हमने आपको गणिका, नहीं नहीं, नगरवधू समझ लिया। बात यह हुई कि गुरूकुल में माहालि ने जिस तरह वीणा के तारों से अपने पैर कटने की बात कही, हमें भ्रम हो गया। कहिए आपने हमें क्षमा कर दिया।

सिंधुतरी : ओह! क्षमा।

प्रियंवदक : आह! सारा श्रम सफल हो गया।

(जाता है।)

प्रियंवदक : ओह! तुम लोग यहां हो ? राजकुमार! वह आ गयी। पैर काटने वाली !

सारंग : कौन ?

प्रियंवदक : वही। वीणा के तारों वाली!

सारंग : वही कौन ?

प्रियंवदक : लो! मरे घबराहट के नाम ही भूल गया।

माहालि : सिंधुतरी ?

प्रियंवदक : हां हां, सिंधुतरी, सिंधुतरी, सिंधुतरी।

सारंग : मुझे भी याद कर लेने दो।

(दोनों नाम रटने लगते हैं। माहालि डांटता है।)

प्रियंवदक : धन्यवाद भी नहीं कहा, उल्टे डांटने लगा।

सारंग : हां नहीं तो। गुरू के वचन भूल गये– 'कृतज्ञ होना आर्य धर्म है।'

माहालि : चुप रहो। मुझे उसके पास ले चलो। नही ंतो इसी खड्ग से तुम दोनों के सिर काट लूंगा।

सारंग : जय हो आंसूवाही परमवीर की !

(सारंग दौड़कर उसी धोती को फैलाकर सिंधुतरी के सामने खड़ा हो जाता है। प्रियंवदक को संग लेकर चलता है।)

प्रियंवदक : अरे। वह कहां चली गयी ? यहीं तो बैठाया था। अरे यह कैसा आश्चर्य है! बड़ा रहस्यमय लगता है। देवी कहां चली गयीं ?

(माहालि जोर से रो पड़ता है। रोते–रोते मूछिंत हो जाता है।)

प्रियंवदक : अरे, यह तो मूर्छित हो गया।

(सारंग उस धोती को बटोरकर आता है।)

सारंग : हाय मुझे क्या पता, प्रेम इतना निर्बल होता है।

प्रियंवदक : देवी! टाप कृपाकर कुछ गायें।

सारंग : निश्चय ही यह मर जायेगा। नहीं नहीं, होश में आ जायेगा।

(वह गाती है।)

'निद्रा से मुझे जगाया रे
प्रियतम से मुझे छिपाया रे!
तज क्षितिज गया है चंद्र कहां
है बंद तिमिर में कुमुद यहां
खिला हुआ कमल छोड़ कहां जाना रे!
प्रियतम से मुझे छिपाया रे
निद्रा से मुझे जगाया रे।

(सारंग और प्रियंवदक एक किनारे खड़े हैं। माहालि धीरे–धीरे जगता है।)

प्रियंवदक : जाग रहा है।

सारंग : धूर्त कहीं का!

प्रियंवदक : कैसे देख रहा है!

सारंग : वह भी एकटक निहार रही है।

प्रियंवदक : दोनों।

सारंग : हमें यहां से हट जाना चाहिए। यह धर्म के प्रतिकूल है।

प्रियंवदक : देखना धर्म है। गुरू ने बारंबार कहा है–देखो। देखो।

सारंग : देखने का मतलब यह नहीं है। देखना माने देश को देखो, परिवेश को देखो।

प्रियंवदक : चुप रह। मैं यहीं प्रतीक्षा करूंगा।

सारंग : तो मैं जाऊं ?

प्रियंवदक : देख। देख।

सारंग : अच्छा, तो मैं भी देखूं ?

(दोनों छिपकर देखने लगते हैं।)

माहालि : अहा! मैं कोई स्वप्न तो नहीं देख रहा ?

सारंग : धत्त तेरे की !

माहालि : (गा पड़ता है।)

'घर तज भटक रहा मैं दूर
प्रिया उर भर–भर आता।...'

सारंग : कितना बेसुरा गा रहा है।

प्रियंवदक : गीत में कोई संगीत ही नहीं। भाषा व्याकरण दोनों का सत्यानास।

प्रियंवदक : अरे, कविता करने लगा !

सारंग : आगे बढ़ने की हिम्मत नहीं हो रही है, तभी तो।

प्रियंवदक : देखो देखो वह खुद बढ़ रही है, बेचारी।

(विराम।)

सिंधुतरी : 'पूर्व–जन्म का साथी जो
सो खड़ा हृदय में आय।
जीवित पर जड़वत् प्रिय मूरति
देख दृष्टि अकुलाय।।
परिचित प्रिय है पास
न वह कुछ कहे न मैं ही बोलूं।
बिना अवसर चंचल पीड़ित
यह अंतराल कहां खोलूं ?

प्रियंवदक : अरे बुद्धू! उत्तर ?

(सारंग गा पड़ता है।)

'प्रेम पुरूष में हो या नहीं रे
स्त्री के मन में है, बात सही रे।...'

प्रियंवदक : चुप रह। वह उत्तर दे रहा है। अभिनय देख, अभिनय।

सारंग : बोलता रहता है!

माहालि : सिंधुतरी! जगो! मैं वही राजकुमार माहालि हूं।

सिंधुतरी : मेरे राजकुमार! जगो! मैं सिंधु देश की वही राजकुमारी सिंधुतरी हूं।

माहालि : प्रमाद के घर में आंसू पोंछने का जो अधिकार न था, वह आज प्राप्त हुआ। पर जिस मुख को देखने और जिस पर मुग्ध होने का अधिकार वहां उस समय न था, उस पर आज भी नहीं। किन्तु क्षमा करना। जिसे देखे बिना नहीं रहा गया,उसे आज देखा, देख रहा हूं और देखता रहूंगा।

सारंग : तो बेसिरपैर का इतना बोलना क्यों है ?

सिंधुतरी : तुम अपनी मूर्छा से सुखी हो सकते हो, पर मैं नहीं। मुझे तो तभी सुख मिल सकता है जब तुम्हारी जैसी मूर्छा मुझे भी मिल जाए।

प्रियंवदक : बस भाई बस, जो होना था सो हो गया। अब फूट जाओ यहां से, वरना कहीं गुरूजी ने देख लिया तो लेने के देने पड़ जायेंगे। यही है आर्यावर्त का उद्वार ?

सारंग : पर भइया, हमारी क्या गत बनी : न देख गया न बोला गया, हृदय यह तनिक भी न खोला गया !

(दोनों जाते हैं।)

महालि : प्रिये, मैं बहुत दुःखी हूं।

सिंधुतरी : आपने मेरा दुःख दूर कर दिया।

माहालि : पर मेरा दुःख और बढ़ गया।

सिंधुतरी : ऐसा क्यों ?

माहालि : यह पूछो कि मैं तुम्हारी वीणा का संगीत सुनते–सुनते क्यों उस तरह भागा ? क्यों अपना पैर काट लिया ? (रूककर) जहां कहीं भी मैं प्रेम में बंधने लगता हूं, वहां से मैं भयभीत भागता हूं। किन्तु प्रेम बिना कभी नहीं रह सकता। उसका आकर्षण मुझे खींचना रहता है।

सिंधुतरी : हमारा दुःख–सुख समान है। उसी ने इस तरह हमें मिलाया।

माहालि : पर मैं केवल दुःखी हूं।

सिंधुतरी : आप प्रेम में बंधने लगते हैं, यहीं दुःख है ? ओहो! प्रेम आपके लिए अहंकार है, यही दुख का मूल है।

माहालि : उपदेश मत दो! आचार्य चाणक्य ने उपदेश दे दे कर .... तुम कौन हो ?

सिंधुतरी : तुम कौन हो ?

माहालि : मैं केवल प्रेम हूं।

सिंधुतरी : फिर बंधन क्यों अनुभव करते हो ?

माहालि : यही नहीं जानता। प्रेम का दुःख मुझे बिच्छू के डंक–सा चुभता है। यह पीड़ा हवा की भांति मुझे चारों ओर से जकड़ लेती है।

सिंधुतरी : विराट से बंधकर ही उसके भीतर से अपना प्रेम पाया जा सकता है।

माहालि : मेरे लिए तुम्हीं मेरा संसार हो।

सिंधुतरी : मेरे लिए तुम्ही मेरा कल्याण हो। चलो, जिस कार्य में तुम्हारे मित्र चंद्रगुप्त और गुरूदेव चाणक्य लगे हैं, उसी कार्य से हम भी जुड़ जाएं और अपने प्रेम को सार्थक करें।

माहालि : हमें क्या करना होगा ?

सिंधुतरी : जो हम हैं, वही ... ।

(दोनों जाते हैं।)

चौथा दृश्य

स्थान : श्रावस्ती का पान्थागार

समय : संध्या।

(राक्षस को बंदी बनाये हुए सिंहरण और बंधुल आते हैं।)

सिंहरण : गुरूदेव! गुरूदेव!

बंधुल : गुरूदेव!

(प्रियंवदक आता है।)

प्रियंवदक : ध्यान कर रहे हैं।

(सारंग आता है।)

सारंग : यह कौन है ?

सिंहरण : नंद का मंत्री राक्षस!

सारंग : अच्छा, तो यही राक्षस है ?

प्रियंवदक : पर इसमें राक्षस क्या है ?

सारंग : न सींग है, न पूंछ है, न बड़े–बड़े दांत हैं।

बंधुल : सब इसके पेट में हैं।

(चाणक्य का प्रवेश।)

चाणक्य : चंद्रगुप्त कहां हैं ?

सिंहरण : युद्धबंदियों का प्रबंध कर आ रहे हैं।

चाणक्य : द्वन्द्व–युद्ध में क्या हुआ ?

बंधुल : चंद्रगुप्त ने बड़ी वीरता से युद्ध किया। अलक्षेन्द्र मारा गया।

चाणक्य : साधुवाद!

सिंहरण : समस्त उत्तरापथ में अलक्षेन्द्र के मारे जाने पर नया उत्साह फैल गया।

बंधुल : आर्य, अनेक प्रमुख यवनों और आर्यगणों की उपस्थिति में यह युद्ध हुआ। वह खड्ग परीक्षा देखने योग्य थी। वह वीर दृश्य अभिनंदनीय था। आपके योजनानुसार सिंहरण अपनी सेना सहित शिविर के बाहर तैनात था। मैं युद्धशाला की रक्षा कर रहा था। धायल अलक्षेन्द्र के गिरते ही भयानक हलचल हुई, पर पराजय का क्षोभ–मात्र था। एक ओर से अलक्षेन्द्र का सहायक यूडेमिस दौड़ा, दूसरी ओर से आम्भीक, आर्य योद्धाओं ने उनके सिर काट लिये। फिर यह राक्षस अपनी शक्ति के साथ हमें घेरने दौड़ा। चंद्रगुप्त के हाथों यह बंदी हुआ।

राक्षस : वह युद्ध नहीं कपट–युद्ध था।

चाणक्य : आम्भीक क्या था ? तुम क्या हो ? राक्षस को मुक्त कर दो।

सिंहरण : यह विश्वासघाती है।

बंधुल : आर्य, चंद्रगुप्त की आज्ञा है, इसे मुक्त न किया जाए।

चाणक्य : चंद्रगुप्त बालक है।

(राक्षस को मुक्त करता हुआ।)

चाणक्य : जाओ राक्षस, तुम मुक्त हो। मगध राज्य में अपनी शक्ति का संगठन कर तुम्हें अभी संघर्ष करने है। मेरा कोई शत्रु नहीं। मेरा कोई मित्र नहीं। अभी ध्यान करते समय मैंने सूर्य को देखा।

प्रियंवदक : (अलग) सूर्यास्त के बाद सूर्य देखना ? आश्चय है।

चाणक्य : एक सूर्य को देख्ते–देखते असंख्य सूर्य देखने लगा। हरएक सूर्य गतिमान था। सारे सूर्य एक शून्य के चारों ओर घूम रहे थे। मैं उस शून्य में प्रवेश करने लगा। मुझे अनुभव होने लगा, अब मैं वही हूं जो वास्तव में हूं।

राक्षस : वास्तव में तुम मायावी हो। हत्यारे जघन्य अपराधी! तुम्हीं ने महापद्मनंद की हत्या की। पर्वतेश्वर, आम्भीक और नंद के पुत्रों को मारा।

(सिंहरण और बंधुल राक्षस पर खड़ग द्वारा आक्रमण करते हैं, चाणक्य उन्हें रोकते हैं।)

चाणक्य : इसे अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त कर लेने दो। यह दुःख और संताप में डूबा है, इसे प्रकाशित होने दो। इसका अहंकार घायल है। घाव में से रक्त बह जाने दो।

राक्षस : क्या तेरा अहंकार घायल नहीं ?

चाणक्य : हमस ब का अहंकार घालय है। मेरा, तेरा, चंद्रगुप्त, मलयकेतु, सिंहरण, बंधुल, हम सब का। तभी तो हम प्रतिक्रिया के जगत में हैं। वह कौन था, जिसने किशोर चंद्रगुप्त को मुरा दासी का शूद्र पुत्र कहा ? वह कौन था जिसने मुझे नंद की श्राद्धशाला में समस्त ब्राहमणों के सामने कुरूप मलेच्छ ब्राहमण कहा ? गुरूकृपा से जिस क्षण से मैं उस घाव को देखने लगा, मैं जाग गया। मेरी रात बीत गयी। मेरे चित्त में प्रातःकाल हुआ। करूणा का सूर्योदय हुआ। मैं देखने लगा–क्या है मेरा श्रेय? क्या है मेरा प्रेय ? मेरा श्रेय है आर्यावर्त, एक भारत देश। किसी राज्य का खंड नहीं। कोई शूद्र–अशूद्र नहीं। कोई आर्य–अनार्य नहीं। एक अखंड एक। और मेरा प्रेय है मेरी हिंसा, प्रतिहिंसा, मेरी कुटिलता, मेरी इच्छा, मेरी लालसा, मेरा क्रोध। श्रेय और प्रेय दोनों को खुली आंखों से, अपने कर्मों से देख और भोगकर ही जान पाऊंगा मैं क्या हूं ? चाणक्य क्या है ? चंद्रगुप्त और यह संसार क्या है ? जाओ कर्म करो और देखो मुम क्या हो! जओ! निर्भय होकर पूरी निष्ठा के साथ मुझे और चंद्रगुप्त को पराजित करने का यत्न करो।

राक्षस : व्यंग–बाण मेरे लिए असहय हैं।

चाणक्य : पर यह यथार्थ है। इसे खूब कस कर पकड़ते क्यों नहीं ?

(राक्षस जाता है।)

चाणक्य : तुम सब जाओ। राक्षस नगर–भर में उत्तेजना फैला सकता है। सिंहरण, बंधुल पर ध्यान रखना। इसके मन का यथार्थ है मल्ल और लिच्छवि राजवंश में वैर। यह चाहता है मल्ल रहें, लिच्छवि नष्ट हो जाएं। यह सोचता है मल्ल आर्य हिन्दू हैं, लिच्छवि बौद्ध अनार्य हैं। यह दूसरे को नहीं देख पाता। स्वयं को देखता है दूसरे के नाम पर।

(सब जाते हैं।)

प्रियंवदक : गुरूजी, हम लो भी जाएं ?

सारंग : गुरूजी, हमें क्या आज्ञा है ?

(विराम)

प्रियंवदक : (अलग सारंग से।) आश्चय है। हमारी ओर ध्यान ही नहीं।

सारंग : शी, शी, शी आर्य चंद्रगुप्त आ रहे हैं।

प्रियंवदक : साथ में कोई अपूर्व सुन्दरी है। ग्रीक देश की लगती है।

(चंद्रगुप्त और कार्नेलिया आते हैं। चंद्रगुप्त चाणक्य का चरण–स्पर्श करता है।)

चंद्रगुप्त : यही हैं गुरूदेव, आर्यश्रेष्ठ चाणक्य।

कार्नेलिया : मेरा प्रणाम स्वीकार हो!

चाणक्य : सौभाग्यवती हो!

कार्नेलिया : आश्चर्य है, आप लोग सबको आशीर्वाद देते हैं। जानते हैं मैं कौन हूं ?

चाणक्य : आशीष के लिए परिचय की आवश्यकता नहीं।

चंद्रगुप्त : अलक्षेंद्र के सेनापति सेल्यूकस की कन्या कार्नेलिया।

कार्नेलिया : घर का नाम हेलेन है।

चंद्रगुप्त : हेलेन!

चाणक्य : इस देवी को मैं जानता हूं। यह जिस महात्मा से वेद और उपनिषद् की शिक्षा ले रही है, वह मेरे गुरूभाई अकुलश्री हैं। वह जन्मांध हैं, पर दिव्य दृष्टिवान हैं! (सहसा) पर तुम दोनों की भेंट कैसे हुई ? अलक्षेंद्र की मृत्यु से ... ।

कार्नेलिया : नहीं, नहीं यह क्या कह रहे हैं ? अलक्षेंद्र जीवित हैं।

चाणक्य : ओह! सिंहरण ने झूठ कहा। क्षमा, देवि, मुझे भ्रम हो गया था।

कार्नेलिया : आप जैसे गुरू को भी भ्रम होता है ?

चाणक्य : अगर भ्रम है तो मुझे क्यों नहीं होगा ? अगर शिष्य झूठे हैं तो गुरू झूठा होगा। (रूककर) चंद्र, जाओ, विश्राम होगा। जाओ, आतिथ्य का प्रबंध करो।

(चंद्रगुप्त के साथ प्रियंवदक और सांरग भी जाते हैं।)

चाणक्य : देवि, आशा छोड़ दो तभी ज्ञान मिलेगा।

कार्नेलिया : आशा छोड़ दूं ?

चाणक्य : आशा भ्रम है। देखो न, तुमने मोहवश यह आशा पाल रखी थी कि मुझ जैसा गुरू भ्रम का शिकार नहीं होता। पर होता है, यह जानकर तुम्हें दुख हुआ। क्यों ? तुम्हीं ने आशा की थी। मैंने नहीं। (रूककर) बैठो। चंद्र से तुम्हारी भेंट कैसे हुई ?

कार्नेलिया : मुझे बैठना अच्छा नहीं लगता।

चाणक्य : उपनिषद् का अर्थ ही है—पास बैठकर सुनना।

(कार्नेलिया मुस्करा पड़ती है।)

कार्नेलिया : ग्रीक सम्राट अलक्षेंद्र और चंद्रगुप्त का वह खड्ग युद्ध देखने योग्य था। वह वीरतापूर्ण दृश्य आश्चर्यजनक था। परमवीर अलक्षेंद्र का खड्ग टूट गया था। वह आहत, भूमि पर गिरने जा रहे थे। चंद्रगुप्त ने खड्ग फेंककर गिरतु हुए अलक्षेंद्र को अपनी दायीं भुजा पर संभाल लिया। अलक्षेंद्र ने पूछा—'ऐसा क्यों ?' चंद्रगुप्त ने कहा—'भारतीय वीरता में विश्वास रखते हैं, हत्या में नहीं।'

चाणक्य : सावधान, आशा न करने लगना। (रूककर) अलक्षेंद्र अपनी सेना सहित वापस लौट गया ?

कार्नेलिया : हमने उन्हें गांधार सीमा के उस पार विदा दी।

चाणक्य : और राजा आम्भीक ?

कार्नेलिया : उसी युद्ध में वह मारे गये।

(प्रियंवदक का आना।)

प्रियंवदक : देवी, चलकर आतिथ्य स्वीकार करें।

(प्रियंवदक के साथ कार्नेलिया का जाना।)

पॉचवॉ दृश्य

स्थान : श्रावस्ती का पान्थागार

समय : रात का पहला पहर।

(चाणक्य के सामने सिंहरण और बंधुल।)

चाणक्य : सच सच बताओ, मुझसे झूठ क्यों कहा ? असत्य क्यों बोले कि चन्द्रगुप्त के खड्ग से अलक्षेंद्र मारा गया ? (अलग से) देखां ! जो झूठे हैं उन्हीं से सत्य बोलने को कह रहा हूं। (प्रकट) डरो नहीं। जब झूठ बोलते हुए नहीं डरे . . .

सिंहरण : मुझसे बंधुल ने कहा।

बंधुल : मैंने आर्यवीरों को शिविर में जय–जयकार करते हुए देखा।

चाणक्य : देखा या सुना ?

बंधुल : सुना और देखा भी।

चाणक्य : क्या देखा ?

(दोनों चुप हैं।)

चाणक्य : अपने–आप को देखा। जो अपनी कामना थी, अलक्षेंद्र अपने चंद्रगुप्त के खड्ग से मारा जाए, वही देखा। जो है, वह नहीं दिखायी पड़ा।

सिंहरण : क्षमा, गुरूदेव।

बंधुल : मुझे भ्रम हुआ।

चाणक्य : कहीं कोई क्षमा नहीं है। कहीं कोई भ्रम नहीं है, बाहर के जगत में। सब कुछ हमारे भीतर है। सुनो! भ्रम से मुक्ति पाने के लिए तुम्हें भ्रम–जाल में जाना होगा। सिंहरण, तुम्हें अपना रूप बदलना होगा। आज से तुम्हारा नाम जीवसिद्धि हुआ। तुम बौद्ध भिक्षु के रूप में राक्षस के पास रहोगे ? उसके परम विश्वासपात्र जीवसिद्धि, तुम वहां मेरे गुप्तचर होगे।

सिंहरण : आज्ञा शिरोधार्य।

चाणक्य : बंधुल। तुम मेरे दूसरे गुप्तचर होगे। आज से तुम्हारा नाम सिद्धार्थक हुआ। मेरे गुप्तचरों ने बताया है कि आमात्य राक्षस के दो परम मित्र हैं एक है सेठ चंदनदास जौहरी, जिसके यहा राक्षस–परिवार छिपा है। दूसरा है शकटदास कायस्थ। तुम शकटदास के परम मित्र बनकर रहोगे।

बंधुल : जो आज्ञा, गुरूदेव।

चाणक्य : तत्काल कार्य यह है कि आज संध्या समय मगध के प्रतिनिधि नागरिकों की एक सभा बुलायी गयी है। एक ओर मैं रहूंगा, दूसरी ओर राक्षस। राक्षस के प्रति जनमत क्या है, कितना है, इसका मुझे प्रत्यक्ष पता लगाना है। सभा में भेष बदलकर तुम उपस्थित रहोगे और समय देखकर तुम राक्षस के पक्ष में मेरे विरोध में बहुत ऊंचे स्वर में बोलने लगोगे। शकटदास तुमसे आकृष्ट होगा।

(दोनों जाते हैं। दूसरी ओर से माहालि आता है।)

माहालि : गुरूदेव के चरणों में प्रणाम।

चाणक्य : कहो ! वीणा के तारों का घाव ठीक हो गया ?

माहालि : अब तो वह घाव हृदय में चला गया।

(प्रियंवदक और सारंग हंसते हैं।)

माहालि : देखिए, ये हंसते हैं।

चाणक्य : आनंद लो न। दुखी क्यों होते हो ?

माहालिः मेरा दुख वहीं सिंधुतरी है। वह कहती है जगत के अनुराग के भीतर से अपने प्रेम को मुझसे जोड़ो। पहली बात तो यह कि उल्टी–सीधी बात मेरी समझ में नहीं आती। दूसरी बात यह, गुरूदेव, क्षमा कीजिए, आपने हमें सब शास्त्र पढ़ाया, प्रेम–शास्त्र नहीं पढ़ाया।

चाणक्य : प्रेमानुभूति से विहीन आत्म–शक्ति और कर ही क्या सकती है ?

माहालि : ऐ! तुम लोग यहां से जाओ।

(सारंग और प्रियंवदक को भगाना।)

माहालि : गुरूदेव! आप तो इतने महापराक्रमी, समर्थ पुरूष हैं, कहीं प्रेम क्यों नहीं कर लेते ?

चाणक्य : देश–प्रेम, मानव–कल्याण व्रत क्या प्रेम नहीं है ?

माहालि : यह सब अपने–आपको धोखा देना नहीं है ?

चाणक्य : ज्ञान आते ही यौवन चला जाता है। जब तक माला गूंथी जाती है, फूल कुम्हला जाते हैं। गुरू ने कहा था, समस्त ज्ञान अहंकार है, हृदय को मरूभूमि बना देने वाला। एक क्षीण, कोमल अनुभूमि है, सुवासिनी, उसी के लिए तड़पता हुआ कुसुमपुर जा रहा था और रास्ते में कुश का वह गड़ना, महापद्मनंद की श्राद्धशाला में वह घोर अपमान ... ।

माहालि : सुवासिनी ! नंद की रंगशाला की वह महान नर्तकी ? मैंने देखा है। मैं उस पूज्या के पास जाऊंगा।

चाणक्य : नहीं। नहीं।

माहालि : आप ही ने कहा था, जो भाव पैदा होता है, वह बिना भोगे नहीं मिटता।

चाणक्य : माहालि !

(माहालि का जाना।)

चाणक्य : यह कैसा रहस्य है। इच्छा भीतर, कामना बाहर। भाव अंतस में है। पर इच्छा की वस्तु बाहर। चाह है पर दुराव भी है। जो नहीं है वही है। जो है वह नहीं है। (अचानक) प्रियंवदक! सरंग!

(दोनों दौड़े आते है।)

दोनों : आज्ञा, गुरूदेव!

चाणक्य : कौन है गुरू ? कहां है वह गुरू मुझमें ? मैं केवल चाणक्य हूं। नागरिक सभा में मेरे चारों ओर आज विशेष ध्यान रखना। राक्षस के गुप्तचरों का जाल फैला है। मेरी सुरक्षा की जिम्मेदारी तुम्हीं पर है।

(चाणक्य का तेजी से जाना। दोनों पीछा करते हैं।)

छठा दृश्य

स्थान : पाटलिपुत्र।

समय : संध्या।

(राजपथ पर नगर के लोग इकट्ठे हो रहे हैं। एक ओर राक्षस और दूसरी ओर चाणक्य के लोग।)

चाणक्य : (आते ही) देवियों और सज्जनों! छुःख यही है। स्वर्गीय महापद्मनंद के महामंत्री राक्षस ... ।

सिद्धार्थक : (बीच ही में) हुअं, स्वर्गीय महापद्मनंद! डसे विष देकर खुद मारा और उल्टे अब उसे स्वर्ग भेज रहे हैं।

('चुप रहो', 'बैठ जाओ', लोग कहते हैं।)

चाणक्य : ठीक है, हम यहां परस्पर विचार करने बैठे हैं। सब निर्भय हो अपने विचार प्रकट करें। हमारे एक अत्यन्त विश्वासी देशभक्त आमात्य राक्षस ने हमें धोखा दिया। हमें इनसे कभी ऐसी आशा न थी। कृपया ध्यान दें, मैं प्रारम्भ से ही सारी बातें आप सबके सामने रख देना चाहता हूं। पहली बात–इतने सुदूरवासी पर्वतक को यहां बुलाकर उसकी सहायता से मगध का राज्य हड़पने जैसा कुचक्र इस देशभक्त ने किया।

सिद्धार्थक : यह सरासर झूठ है। पर्वतक को यहां आधा राज्य देने का झूठा वादा कर और नंद विनाश में उसकी सहायता ले, फिर विष–कन्या द्वारा उसकी हत्या करने का कुचक्र तुमने किया, ताकि उसे आधा राज्य न देना पड़े।

एक नागरिक : यह जवाब राक्षस ने क्यों नहीं दिया ?

दूसरा नागरिक : क्योंकि यह सच नहीं है।

राक्षस : आमात्य चाणक्य, आप आगे कहिए।

चाणक्य : धन्यवाद! छूसरी बात जिस समय नंद के साथ हमारा युद्ध चल रहा था, उस समय आमात्य राक्षस कहां थे ? आमात्य राक्षस उस समय अपनी गुप्त सेना के साथ गंगा के उस तट पर इस बात की प्रतीक्षा कर रहे थे कि नंद जब राक्षस को अपना राज्य उत्तराधिकारी घोषित कर दे, तब यह उसकी सहायता के लिए आयें। इस तरह आमात्य राक्षस ने अपने राजा नंद के प्रति विश्वासघात किया।

राक्षस : यह झूठ है! स्रासर झूठ! मैं पर्वतक के आक्रमण को रोकने के लिए गंगा–तट पर युद्धरत था।

तीसरा नागरिक : आचार्य चाणक्य को बोलने दिया जाए।

चाणक्य : यदि यह झूठ है तो हम एक बात और पूछेंगे कि महाराज नंद द्वारा संकट उपस्थित होने की सूचना मिलने पर और परामर्शार्थ बुलाने पर राक्षस उनके पास क्यों नहीं गया ? उसकी चाल तो देखिए कि केवल शत्रु पर्वतक के आक्रमण को रोकने के लिए रक्षा–क्षेत्र का बहाना कर इसने महाराज नंद के पास जाना अस्वीकार किया। बाद में जब राक्षस को पता चला कि मगध की जनता में इस षड्यंत्र का भंडाफोड़ हो चुका है, और चंद्रगुप्त ने सेना का आधिपत्य अपने हाथ में लेकर पर्वतक के दांत खट्टे करने के लिए कूच कर दिया है तब राक्षस को डर हुआ कि लौटकर चंद्रगुप्त उसे कहीं बंदी न कर ले। इसलिए राक्षस मगध की सीमा से ही भाग खड़ा हुआ।

सिद्धार्थक : ये सब मनगढ़न्त बातें हैं। सारा कुचक्र चाणक्य का है। राक्षस देशभक्त है। राक्षस पर ऐसा लांछन लगाना अपराध है।

(क्रोधित लोग सिद्धार्थक पर टूट पड़ते हैं। चाणक्य उसे बचाते हैं।)

चाणक्य : आप लोग दंड का अधिकार अपने हाथ में न लें। यह भी राज्य का नागरिक है। इसे मत व्यक्त करने का अधिकार है।

(लोग सिद्धार्थक को छोड़ देते हैं। शकटदास अलग सिद्धार्थक को अपने अंक से लगा लेता है।)

चाणक्य : (अपने चारों ओर घिरी जनता से) बंधुओ। अब आपको अपने भविष्य पर विचार करना है। बहुत दिनों तक नंद के अत्याचारी शासन से पिसते रहने के बाद आज आपने मुक्ति पायी है। यद्यपि राक्षस ने स्वार्थवश ही नंद–वंश का विनाश कर घोर अपराध किया, तब भी हम इतना कहेंगे ि कइस बहाने आपको एक घोर संकट से छुटकारा मिला है। यदि इस कार्य में राक्षस की निःस्वार्थता और जनता को अत्याचार एवं कठोर दमन से बचाने की पवित्र भावना होती तो हम राक्षस को अपराधी न कहते। पर इसने यह सब ि कया अपने लिए, स्वयं मगध के सिंहासन पर बैठने के लिए। इसलिए अब आपको किसी योग्य शासक के हाथ में देश की राजसत्ता की बागडोर देनी है। मैंने स्वयं इस विषय पर विचार कर जो कुछ निश्चय किया है, उसके अनुसार कुमार चंद्रगुप्त के अतिरिक्त इस पद के योग्य अन्य कोई नहीं ठहरता।

(जनता 'महाराज चंद्रगुप्त की जय', 'चाणक्य की जय' की हर्षध्वनि करती हुई चली जाती है। दृश्य में केवल राक्षस, सिद्धार्थक, शकटदास रह जाते हैं।)

राक्षस : मैं चंद्रगुप्त और घूर्त चाणक्य से अपने स्वामी नंद के वध का प्रतिशेध लेने का संकल्प लेता हूं।

सिद्धार्थक : स्वामी, मैं पूरी तरह से आपके साथ हूं। पर सुना है, इस बीच आप पांचाल नरेश के महामात्य हो चुके हैं।

राक्षस : हां, यह पद मैंने इसीलिए स्वीकार किया है कि अपनी शक्ति को वही बदला लेने के लिए प्रयोग कर सकूं।

(राक्षस बैठकर एक पत्र लिखने लगता है।)

सिद्धार्थक : (अलग दर्शकों से) राक्षस षड्यंत्र रच रहा है। जिसके अनुसार एक विष–कन्या भेजकर चंद्रगुप्त को मार डालने का उपाय कर रहा है। यह सोच रहा है कि चंद्रगुप्त अभी अविवाहित है और राजा हो जाने पर उसे अब स्त्री का अभाव खटकता होगा, अतः वह किसी परम सुन्दरी को ग्रहण कर लेगा, मलय नरेश के नाम से एक जाली पत्र तैयार कर रहा है।

राक्षस : लो यह पत्र।

सिद्धार्थक : (पत्र पढ़ता है।) ''प्रियवर मगध नरेश चंद्रगुप्त! टापके सिंहासनारूढ़ होने के सुखद समाचार से मैं और मेरी प्रजा अत्यन्त हर्षित हैं। समय पर सूचना प्राप्त न होने से मैं उस शुभ अवसर पर स्वयं उपस्थित न हो सका। किन्तु अब अपने राज्य की ओर से उपहारस्वरूप अपनी यह सुन्दर कन्या आपकी सेवा में भेज रहा हूं। विश्वास है, आप इसे स्वीकार करेंगे। आपका शुभेच्दु, मलय नरेश, सिंहनाद।''

तीसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान : पाटलिपुत्र।

समय : संध्या।

(चाणक्य के सामने चंद्रगुप्त और मदनिका)

चंद्रगुप्त : आपका आदेश मिल गया था, आचार्य। मैं सिंधुतट की ओर प्रस्थान करने के लिए तैयार हूं। पर एक कठिनाई है, मदनिका भी मेरे साथ युद्ध–क्षुत्र में जाना चाहती है।

चाणक्य : क्यों ? किसलिए ?

मदनिका : रण–क्षेत्र में यवनों का संहार करने के लिए, सांकल नगरी के विध्वंस का बदला लेने के लिए।

चाणक्य : क्या इसके लिए चंद्रगुप्त प्र्याप्त नहीं है?

मदनिका : कठ–महिलायें क्या पुरूषों से कम वीर हैं?

चाणक्य : नहीं, कठ–महिलायें किसी से भी कम नहीं हैं। पर मैं तुमसें कुछ और काम लेना चाहता हूं।

मदनिका : यह मेरे बिना सिंधु–तट की लड़ाई नहीं जीत सकते।

चाणक्य : क्या तुम चुंद्रगुप्त को इतना चाहती हो?

मदनिका : कठ–स्त्रियां किसी के सामने यों ही सिर नहीं झुका देतीं। हम भगवती दुर्गा की उपासिका हैं, आचार्य। हम केवल उसी पुरूष को अपना प्रेमी मानती हैं, जो हमारी अपेक्षा अधिक वीर हो, जो हमारे दर्प को तोड़ने में समर्थ हा। कुमार चंद्रगुप्त सचमुच वीर हैं। उनकी प्रणय–भिक्षा मेरे लिए गर्व की बात है, आचार्य।

चाणक्य : तुम चंद्रगुप्त से विवाह करना चाहती हो?

मदनिका : जी हां, आचार्य।

चाणक्य : अपने माता–पिता से इस की स्वीकृति प्राप्त कर ली है?

मदनिका : मेरे माता–पिता यवनों के साथ युद्ध करते हुए काम आ गए।

चाणक्य : तुम्हें इस चंद्रगुप्त के कुल और अभिजन का कुछ ज्ञात है?

मदनिका : वह वीर हैं, साहसी हैं और महत्वाकांक्षी हैं। मेरे लिए यही पर्याप्त है।

चाणक्य : क्या तुम मेरी पुत्री बनना स्वीकार करोगी?

मदनिका : यह मेरा सौभाग्य होगा, आचार्य।

चाणक्य : तुम विवाह कब करना चाहती हो?

मदनिका : जब आपका महान उद्देश्य पूर्ण हो जाएगा, और समूची भारत–भूमि एक शासन में आ जाएगी। उस समय तक मैं कुमार चुंद्रगुप्त के साथ–साथ रहूंगी, उनके हृदय में स्फूर्ति उत्पन्न करने के लिए, उन्हें निरंतर कर्त्तवयपालन की प्रेरणा देते रहने के लिए।

चाणक्य : इसके विपरी हो गया तो?

मदनिका : यदि ऐसा हुआ तो मैं अपनी छाती में यह कटार भोंक लूंगी।

चाणक्य : तुम्हारी जैसी पुत्री पाकर मुझे गर्व है।

दूसरा दृश्य

स्थान : राजगृह के शिव–मन्दिर के सामने।

समय : दोपहर।

(चाणक्य के साथ शकटार, प्रियंवदक)

शकटार : अब आर्यभूमि यवनों के आधिपत्य से स्वतंत्र हो गई, आचार्य।

प्रियंवदक : यवनों के स्कंधावार को छिन्न–भिन्न करक ही चंद्रगुप्त ने अपने कार्य की समाप्ति कर दी। मदनिका के साथ चंद्रगुप्त पश्चिम की ओर निरंतर आगे बढ़ते गये। कुम्भा नदी के दक्षिणी तट पर उद्यानपुरी में आर्यो की विजय पताका फहराकर ही उन्होंने विश्राम किया, आचार्य।

चाणक्य : पर अभी असली कार्य शेष है। हिमालय से समुद्रपर्यन्त सहस्र योजन विस्तीर्ण यह आर्य भूमि जब तक एक संगठन में संगठित नहीं हो जाएगी, हमारा कार्य पूर्ण नहीं होगा। यवन लो पुनः भारत पर आक्रमण कर सकते हैं। वे अपने खोए हुए साम्राज्य को पुनः प्राप्त करने का उद्योग अवश्य करेंगे।

शकटार : पर यवनों के साम्राज्य में तो उत्तराधिकार के लिए झगड़े शुरू हो गए हैं, आचार्य। अलक्षेंद्र के विविध सेनापतियों ने अपने–अपने क्षेत्रों में अपने को स्वतंत्र सम्राट घोषित कर दिया है।

चाणक्य : पर यवनों का साम्राज्य बहुत विशाल है। उस साम्राज्य के पूर्वी भाग का सेनापति भी भारत–भूमि पर आक्रमण कर सकता है। यदि भारत एक न हुआ, तो उसके विविध जनपदों के लिए यवन–आक्रमण का मुकाबला कर सकना सुगम नहीं होगा।

(विराम।)

प्रियंवदक : वाहीक देश की स्वतंत्रता और हमारी सेनाओं की विजय का महोत्सव धूमधाम के साथ मनाया जाना चाहिये, आचार्य।

शकटार : हां, यह ठीक है। इससे जनता में उत्साह की वृद्धि होगी। लोगों को स्वतंत्रता के गौरव की अनुभूमि होगी।

प्रियंवदक : राजगृह में इस उत्सव के लिए हमें आपकी अनुमति चाहिये, आचार्य।

चाणक्य : राजगृह का यह उत्सव केवल केकय जनपद का नहीं होगा, इसमें अन्य जनपदों के लोग भी सम्मिलित होंगे। उत्सव का विशेष रूप से आयोजन करो। सब जनपदों के राजकुलों को इस महोत्सव में सम्मिलित होने के लिए निमंत्रित करो।

शकटार : इस महान आयोजन का पुरोधा आपको ही बनना पड़ेगा। अब आप कृपा कर राजगृह के राजप्रासाद को अपनी चरण–रज से पवित्र करें।

चाणक्य : राज्यश्री का उपभोग मेरे भाग्य में नहीं है। यवनों के आधिपत्य का अंत हो गया, मेरा आधार कार्य अब समाप्त हो गया है। मगध के राजकुल का उच्छेद हो जाने पर जब संपूर्ण भारत–भूमि में राजनीतिक एकता स्थापित हो जाएगी, तो एक बार फिर मैं अपनी पर्णकुटी में जा बैठूंगा, वटुकों को त्रयी, आन्वीक्षकी और दण्डनीति पढ़ाने के लिए।

शकटार : इस युद्ध में राष्ट्र के जिन क्षेत्रों को कुछ मूल्यवान खोना पड़ा है, उनमें शिक्षा का क्षेत्र विशेष है।

चाणक्य : शिक्षा किसी भी राष्ट्रका मेरूदंड है। (रूककर) गुरू–शिष्य विद्या और परिवेश शिक्षा कमल के षट्दलों को संग्रथित रखने वाला वह तत्व है जिसके अभाव में सब दल बिखर जाते हैं।

प्रियंवदक : इस महोत्सव के लिए मदनिका और चंद्रगुप्त को भी निमंत्रित करना होगा, आचार्य।

चाणक्य : नहीं, इन प्रेमियों को उद्यानपुरी में ही प्रणय–क्रीड़ा करने दो। अभी मुझे उनसे बहुत काम लेना है। उन्हें कुछ दिन विश्राम कर लेने दो। और, शकटार, तुम्हारा भी कार्य अभी पूर्ण नहीं हुआ। मगध साम्राज्य की

उत्तर–पश्चिमी सीमा पर स्थित इस जनपद का हमारे भावी कार्य की दृष्टि से बहुत महत्व है। शकटार, तुम्हारा वहां रहना बहुत आवश्यक है।

शकटार : क्या मैं इस महोत्सव में मम्मिलित नहीं हो सकता?

चाणक्य : नहीं, तुम्हें अभी जाना है।

(शकटार का जाना।)

चाणक्य : तुम जानते हो, प्रियंवदक, राक्षस मेरा शत्रु है। पर मैं उसकी शक्ति का आदर करता हूं। (रूककर) तुम्हें एक कार्य करना है, प्रियंवदक। सम्राट के अंतःपुर से चंद्रगुप्त की मां मुरादेवी को गिरफ्तार कर लो। चंद्रगुप्त को सूचित कर दो कि उसकी वृद्धा मां बंदीगृह में अन्न–जल के बिना तड़प–तड़पकर प्राण दे रही है। देखता हूं, मां का प्रेम अधिक प्रबल है या राजसिंहासन प्राप्त करने की अभिलाषा।

प्रियंवदक : जो आज्ञा, आचार्य।

तीसरा दृश्य

स्थान : पाटलिपुत्र का राजमहल

समय : संध्या।

(चाणक्य कुछ सोचते हुए घूम रहे हैं।)

(सिद्धार्थक आता है।)

सिद्धार्थक : प्रणाम, गुरूवर !

चाणक्य : कहो, मल्ल राजकुमार बंधुल ?

सिद्धार्थक : अब मल्ल राजकुमार बंधुल नहीं, आर्यावर्त का एक सैनिक–सिद्धार्थक ! यह लीजिए शकटदास के हाथ का लिखा हुआ पत्र।

(चाणक्य खोलकर पढ़ता है।)

चाणक्य : जीवसिद्धि अब तक मुहर लेकर नहीं आया ?

(पृष्ठभूमि से बीन बजाता हुआ कोई सपेरे के भेष में आता है।)

सिद्धार्थक : आ गया जीवसिद्धि।

(बीन बजाता हुआ जीवसिद्धि आता है।)

चाणक्य : कहो, मालवकुमार सिंहरण ?

जीवसिद्धि : केवल जीवसिद्धि, गुरूदेव ! यह रही राक्षस की मुद्रा।

चाणक्य : (लेकर) यह बताओ, यह प्राप्त कैसे हुई ?

जीवसिद्धि : मत पूछिए। सपेरे का भेष बनाकर खेल दिखाता हुआ पहुंचा सेठ चंदनदास के घर पर। सांपों को देख परिवार की स्त्रिंया पर्दे की ओट में छिप गयीं। किन्तु बालकों का स्वभाव आप जानते ही हैं, बड़ा चंचल होता है। सो राक्षस का पुत्र खेल देखने मेरे पास आ गया। बेचारी उसकी मां बहुत घबरायी। मैं बालक पर कोई जादू–टोना न कर दूं, इस भय से बालक की मां पर्दे से निकली और बालक को खींच कर भीतर ले गयी।

स्त्री की उंगली पुरूष की उंगली से स्वभावतः पतली होती है। उसी खींचतान में बालक की मां की उंगली से यह अंगूठी गिर पड़ी। मेरा कार्य सिद्ध हो गया।

चाणक्य : तभी तो तुम्हारा नाम जीवसिद्धि है।

(चाणक्य उस अंगूठी से पत्र पर मुहर लगा देते हैं।)

चाणक्य : राक्षस का मित्र हो जाने के नाते शकटदास को फांसी पर लटाक देने की मैंने आज्ञा दे रखी है। क्योंकि उसने महाराज चंद्रगुप्त के वध का षड्यंत्र करने वाले दारूवर्मा नामक बढ़ई की सहायता की। पर मैं वास्तव में शकटदास को मारना नहीं चाहता। इसलिए फांसी देने वालों को चुपचाप समझा दिया है कि यदि फांरी देते समय कोई व्यक्ति हाथ में यह चिट्ठी लिये वहां आकर उन्हें आंख से संकेत करे तो वे अपराधी को छोड़ वहां से भाग निकलें।

(सिद्धार्थक पत्र लेकर तेजी से जाता है।)

चाणक्य : जीवसिद्धि ! तुम यह आभूषण लेकर मलयकेतु के राज्य में जाओ और इसे राक्षस को भेंट करो। याद रहे ये आभूषण दिवंगत पर्वतक के हैं।

जीवसिद्धि : सब समझ गया।

(जाता है। चाणक्य भी जाते हैं।)

प्रियंवदक : (दर्शकों से) सिद्धार्थक ने अपना काम किया। फांसी से शकटदास को बचाकर उसने कहा– 'मित्र! अब इस चाणक्य और चंद्रगुप्त के राज्य में रहना असम्भव है। इसलिए चलो भाग चलें आमात्य राक्षस के पास।

सारंग : राक्षस को अपना बनाने के लिए चाणक्य को सबसे अधिक आवश्यकता थी कि मलयकेतु और राक्षस में वैर हो जाए। इसीलिए गुप्तचर जीवसिद्धि पर्वतक के आभूषण और मुहरलगा वह जाली पत्र लेकर गया है।

प्रियंवदक : पर चाणक्य के लिए इतना ही काफी नहीं था। मलयकेतु से राक्षस को अलग करके चंद्रगुप्त से जोड़ना उनका परम लक्ष्य थ।

सारंग : इसके लिए स्वयं और चंद्रगुप्त में खटपट हो जाना आवश्यक लगा गुरूदेव को।

(दृश्य बदलता है। चंद्रगुप्त के साथ चाणक्य।)

चंद्रगुप्त : मैं जानना चाहता हूं, मेरी वृद्धा मां को किसने वानप्रस्थाश्रम भेजा ?

चाणक्य : मैंने। अब उन्हें आवश्यकता थी शांति की।

चंद्रगुप्त : औह! टाप मेरे व्यक्तिगत जीवन में भी हस्तक्षेप करने लगे।

चाणक्य : कुछ भी व्यक्तिगत नहीं।

चंद्रगुप्त : राज्याज्ञा अनुसार शरद् पूर्णिमा के दिन नगर में विजय महोत्सव मनाने का निश्चय किया गया था।

चाणक्य : जब तक तुम्हें महांत्री के रूप में राक्षस नहीं प्राप्त हो जाता, यह महोत्सव नहीं मनाया जा सकता।

चंद्रगुप्त : उसकी सारी तैयारी हो चुकी थी। सारी प्रजा आनंद और उल्लास से ···।

चाणक्य : बचपन की चन्द्रिकोत्सव की तुम्हारी वह स्मृति अभी गयी नहीं ?

चंद्रगुप्त : मैं अब वह बालक नहीं।

चाणक्य : वही कटु स्मृति तुम्हारे अचेतन जगत में बैठी हुई है। देखो उसे और मुक्त हो जाओ।

चंद्रगुप्त : आर्य चाणक्य, आप अपनी मर्यादा से बाहर जा रहे हैं।

चाणक्य : मैं स्वयं हूँ अपनी मर्यादा। चाहता हूँ तुम भी अपनी मर्यादा को प्राप्त होवो।

चंद्रगुप्त : मैं आपके उपदेशों से ऊब गया हूं।

चाणक्य : तभी मैंने अध्यादेश निकालकर विजय महोत्सव मनाने पर प्रतिबंध लगा दिया। आदेश में कहा, जब तक देश में राजद्रोहियों का पूरी तरह विनाश नहीं होता, राजा को महामंत्री नहीं प्राप्त हो जाता, कोई भी सार्वजनिक समारोह नहीं होगा।

चंद्रगुप्त : मेरे अधिकार की अवहेलना !

चाणक्य : क्या है तुम्हारा अधिकार, जानते भी हो ? तुम क्या हो, ज्ञान है ?

चंद्रगुप्त : तात ...।

चाणक्य : मैं एक प्रश्न पूछना चाहता हूं। खड्ग युद्ध में पराजित अलक्षेंद्र को उस तरह जाने क्यों दिया ?

चंद्रगुप्त : मैं वीर हूं, हत्यारा नहीं।

चाणक्य : यह बहुत पुराना उत्तर है। असली उत्तर देने से तुम भयभीत हो। स्पष्ट स्वीकार करना चाहिए–तुम्हें कार्नेलिया से प्रेम है।

चंद्रगुप्त : आज मैं भी एक प्रश्न पूछूं ? राक्षस इसी नगर में कई दिनों तक आपकी जानकारी में छिपा रहा। उसे क्यों नहीं बंदी किया गया ?

चाणक्य : राक्षस जैसे महापुरूष की नीति से राष्ट्र–सेवा लेना मेरा लक्ष्य है।

चंद्रगुप्त : राक्षस आपसे बड़ा है ?

चाणक्य : मेरे लिए न कोई बड़ा है, न छोटा। कुटी पर आना, आवश्यक बातें हैं।

(चाणक्य चले जाते हैं।)

चंद्रगुप्त : आवश्यक बातें ..... !

(चंद्रगुप्त जाता है। लोग परस्पर बातें करने लगते हैं।)

पहला : गुरू–शिष्य में ऐसी बातें कभी नहीं सुनीं।

दूसरा : एक–दूसरे ने मुंहतोड़ जवाब दिया।

तीसरा : हो सकता है यह भी चाणक्य की कोई राजनीति हो।

चौथा : राक्षस को जब इस बात का पता चलेगा तो उसकी क्या प्रतिक्रिया होगी ?

पहला : यह बात किसी से छिपी नहीं रहेगी।

दूसरा : उसके गुप्तचर चारों ओर हैं।

चौथा : राज्य–भर में यह बात आग की तरह फैलेगी।

चौथा दृश्य

स्थान : मलयकेतु के राजभवन के सामने।

समय : प्रातःकाल।

(दो सैनिक जीवसिद्धि को पकड़े आते हैं।)

मलयकेतु : कौन है ?

प0 सैनिक : देव, बिना आज्ञा–पत्र के नगर से बाहर जाते हुए यह इस पत्र के साथ पकड़ा गया।

मलयकेतु : कौन हो तुम ?

जीवसिद्धि : आमात्य राक्षस का सेवक हूं।

मलयकेतु : यह पत्र क्या है ? इस पर तो राक्षस की मोहर लगी हुई है। (पढ़ता है।) ''हमारे विपक्ष का निराकरण करके सच्चे मनुष्य ने सच्चाई दिखाई। पर अब तुम हमारे पहले के रखे हुए हितकारी चरों को भी जो–जो देने को

कहा था, देकर प्रसन्न करना। क्योंकि ये लोग प्रसन्न होंगे तो अपना आश्रय छूट जाने पर भी सब भांति अपने उपकारी की सेवा करेंगे। दूसरा वर्ग वह है जिसमें से कोई तो शत्रु का कोष और हाथी चाहते हैं और कोई राज्य। उन्हें भी प्रसन्न करना ही पड़ेगा। हमको सत्यवादी ने जो तीन आभूषण भेजे थे, वह यथासमय मिले। हमने पत्र के साथ कुछ भेजा है उसे ले लेना और शेष मौखिक रूप से पत्रवाहक से सुन लेना।'' (रूककर) बड़ी गोलमोल भाषा में है। इसका कोई अर्थ तुम्हारी समझ में आया ?

प0 सैनिक : कुछ नहीं।

दू0 सैनिक : कुछ सिर–पैर ही नहीं है। क्यों वे, यह पत्र किसका लिखा है ?

मलयकेतु : सही–सही बता।

जीवसिद्धि : आर्य, मैं नहीं जानता।

प0 सैनिक : धूर्त, पत्रवाहक है, और पता नहीं ?

मलयकेतु : इसे ले जाकर तब तक पीटो, जब तक पत्र का रहस्य बताना स्वीकार न कर ले।

(सैनिक उसे अलग ले जाकर पीटना शुरू करते हैं।)

जीवसिद्धि : सुनिए, महाराज! मुझको आमात्य राक्षस ने यह पत्र और यह आभूषण देकर चंद्रगुप्त के पास भेजा था।

(दोनों सैनिक अलग से)

प0 सैनिक : अरे हमें क्या पता इसके पास आभूषण भी हैं।

दू0 सैनिक : हमारे हाथ से गया।

मलयकेतु : मौखिक क्या कहने को कहा था ?

जीवसिद्धि : आमात्य राक्षस ने मुझे यह करने को कहा था कि मेरे मित्र कुलूत देश के राजा चित्रवर्मा, मलयाधिपति सिंहनाद, कश्मीरेश्वर पुष्कराक्ष, सिंधु महाराज, पारसीक पालक मेघाक्ष ... इन पांच राजाओं से आपकी पूर्व संधि तो हो चुकी है, उसके अनुसार इनमें से प्रथम तीन तो मलयकेतु का राज्य चाहते हैं ओर शेष दो कोष और हाथी।

मलयकेतु : (सहसा) ऐसा विश्वासघात! जाओ राक्षस को लेकर आओ।

(पहला सेनिक जाता है। मलयकेतु चिंता और क्रोध से विचलित है।)

जीवसिद्धि : (दर्शकों से) स्मरण रहे, आमात्य राक्षस को मलयकेतु ने जो आभूषण अपनी ओर से पहनने के लिए भेजे थे, वे उन आभूषणों से अधिक सुन्दर नहीं थे जिन्हें राक्षस ने शकटदास को कहकर मोल लिया था। और यह भी स्मरण रहे कि मोल लिए गये आभूषण वे थे जो वर्ततक की मृत देह से उतारकर चंद्रगुप्त ने उसके श्राद्ध के अवसर पर ब्राहमणों को दान में दिए थे और चाणक्य की आज्ञा से ब्राहमणों ने उन आभूषणों को राक्षस के हाथ बेच दिया था। राक्षस उन मोल लिए गये आभूषणों को ही पहना करता था और मलयकेतु के आभूषण उसकी पेटी में बन्द पड़े रहते थे। एक दिन अवसर पाकर मैंने राक्षस को इतना प्रसन्न किया कि उसने मलयकेतु के वे आभूषण मुझे इनाम में दे डाले। ये वही आभूषण हैं जिनके लिए इस पत्र में लिखा है : 'हमने पत्र के साथ कुछ भेजा है, उसे ले लेना।

(सेनिक के साथ राक्षस आता है।)

मलयकेतु : क्यों आमात्य, क्या यह सब सत्य है ?

राक्षस : यह सब चाणक्य का षड्यंत्र है।

मलयकेतु : मेरे ये आभूषण शत्रु के हाथ कैसे लगे ?

राक्षस : पता नहीं यह रहस्य क्या है ··· ?

मलयकेतु : यह मुहर किसकी है ?

राक्षस : यह छल है। यह बनावटी है।

मलयकेतु : क्यों जीवसिद्धि, यह पत्र किसने लिखा ?

जीवसिद्धि : शकटदास ने।

राक्षस : हे ईश्वर! शकटदास ऐसा मित्र कभी ऐसा करेगा, कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा।

मलयकेतु : शकटदास की लिखावट के नमूने मेरे पास हैं। कई पत्र हैं उसके मेरे पास। (जाकर ले आता है।) लीजिए यह पत्र शकटदास का ही लिखा हुआ है, मिला लीजिए अक्षरों को।

राक्षस : (मिलाकर) देव जो न कर डाले।

मलयकेतु : पत्र में आपने तीन आभूषण भेजे थे, वे मिले, का क्या अर्थ है ? और उनमें से एक आभूषण आपने पहन रखा है। यह आभूषण मेरे दिवंगत पिता पर्वतक का है। यह कहां मिला ?

राक्षस : जौहरी से मोल लिया था।

मलयकेतु : झूठे। विश्वासघाती! तू ही है मेरे पिता का हत्यारा!

राक्षस : मैंने उनका वध किया ? मैंने ? नहीं, नहीं।

मलयकेतु : हां, तूने, तूने! यह जीवसिद्धि तेरा ही तो मित्र है। इसी ने रहस्यभेदन किया।

राक्षस : आह! तो जीवसिद्धि भी शत्रु का गुप्तचर निकला ··· ।

मलयकेतु : जो कुछ तूने किया, उसका भयानक दंड हो सकता है। किन्तु मैं मलयकेतु हूं, विश्वासघाती राक्षस नहीं। जाकर चंद्रगुप्त की ही सेवा कर, जिसके लिए तूने अपने आश्रयदाता के साथ विश्वासघात करने में भी संकोच नहीं किया!। जा!

(राक्षस चुपचाप चला जाता है।)

चौथा अंक

पहला दृश्य

स्थान : पाटलिपुत्र में राजप्रासाद के बाहर एक खुले मैदान में कुटी।

समय : प्रातःकाल।

(मगध के सम्राट चंद्रगुप्त के साथ शकटार, बंधुल, सारंग सभी उपस्थित हैं।)

चाणक्य : वत्स चंद्रगुप्त! अब तुम शीघ्र भारत–भूमि के एकच्छत्र चक्रवर्ती सम्राट–पद को प्राप्त कर सकोगे। इस आर्यभूमि की रक्षा और उन्नति का उत्तरदायित्व तुम्हारे कंधो पर होगा। नन्दकुल का विनाश कर सम्राट पद के लिए मैंने तुम्हें इसलिए चुना है, क्यों कि तुम वीर हो, तुम्हारी आकांक्षाएं महान हैं, और तुममें उद्दण्ड साहस है। पर तुम यह भली–भांति समझ लो कि यह ऐश्वर्य और वैभव भोग–विलास के लिए नहीं है। (रूककर) यह न समझो कि तुम सर्वज्ञ हो। राजशक्ति को पाकर मनुष्य मदमस्त हो जाता है, अंधा हो जाता

है। तुम सदा बड़ों का संग करो। तुम्हारे राज्य में जो भी विद्वान आचार्य हों, कुलमुख्य हों, जनपदों और गणों के वृद्ध नेता हों, उनकी सम्मति को ध्यान से सुनो, उनके विचारों का आदर करो और उनकी प्रज्ञा के सम्मुख अपनी बुद्धि को उत्कृष्ट न समझो। (रूककर) मनुष्यों के लिए धर्म, अर्थ और काम तीनों की आवश्यकता है। मनुष्य न धन के बिना रह सकता है, और न काम के बिना। मानव जीवन के लिए धन अनिवार्य है, क्योंकि शरीर और मन की स्थिति ओर उन्नति के लिए जिन साधनों की आवश्यकता है, वे धन से ही प्राप्त होते हैं। (रूककर) जन–समाज तभी मर्यादा में रह सकेगा, जब वह धर्म, अर्थ और काम तीनों का समान रूप से पालन करेगा। तुम्हारा मुख्य कर्तव्य यही है कि तुम जनता को मर्यादा में रखो। कोई मनुष्य केवल धर्म के अनुसरण की धुन में अर्थ और काम की उपेक्षा न कर दे और साथ ही कोई मनुष्य अर्थ या काम के पीछे पड़कर धर्म को न भूल जाए। पर तुम अपने इस मुख्य कर्तव्य का पालन तभी कर सकोगे, जब तुम निरंतर उत्तिष्ठमान रहोगे, सदा उद्यमशील रहोगे। राजा बनकर तुम्हें भोग–विलास में नहीं फंसना है, तुम्हें अपने को कठोर नियंत्रण में रखना है। भोग–विलास और नाच–रंग का तुम्हारे जीवन में कोई स्थान नहीं है। यदि तुम उत्थान के लिए प्रयत्नशील न होगे, तो तुम्हारा विनाश तो निश्चित है। इसके विपरीत यदि तुम निरंतर उद्यम और उत्थान में तत्पर रहे, तो सब अर्थ और सम्पदा तुम्हें प्राप्त हो जाएगी। (रूककर) सुनो शकटार, अब मेरा काम समाप्त हो गया है। तक्षशिला वापस लौटने से पहले मेरी इच्छा है, आप भारत के महामंत्री पद को संभाल ले।

शकटार : आचार्य। मेरी दशा अब एक जीवन्मृत के समान है। मेरी सम्मति में आचार्य राक्षस को ही सम्राट चंद्रगुप्त का महामंत्री बनाया जाए।

चाणक्य : मैं तुम्हारे मुख से यही सुनना चाहता था।

चंद्रगुप्त : इस कार्य के लिए आपसे योग्य संमर्थ अन्य कौन हो सकता है, आचार्य ? इस आर्य भूमि की रक्षा और उन्नति के कार्य को आप ही क्यों नहीं संभाल लेते, आचार्य ?

चाणक्य : वत्स! राज्य के महामंत्री के कार्य से भी अधिक महत्तवपूर्ण कार्य मुझे करना शेष है। वह कार्य है ज्ञान के विस्तार का, शास्त्रों के उद्धार का। उत्तम विचार मनुष्य–समाज को उच्चता की ओर ले जाते हैं, और निकृष्ट विचार उसे नीचे गिरा देते हैं। भिक्षुओं और मुनियों के पीछे चलकर आर्यजाति की अधोगति हो रही है। भिक्षु–जीवन उत्तम है, सन्यासी समाज के शिरोमणि होते हैं, पर समाज के सभी अंगों को सबल होना चाहिए। वर्ण–व्यवस्था और समाज–मर्यादा आर्यजाति के सामाजिक संगठन के आधार हैं।

चंद्रगुप्त : आपका उद्‌देश्य अत्यन्त महान है, आचार्य। क्या मैं भी इसमें सहायक हो सकता हूं?

चाणक्य : क्यों नहीं, वत्स! ज्नता को स्वधर्म में स्थापित रखना राजा का परम कर्त्तव्य है। तुम्हें राजशासन द्वारा यह व्यवस्था अवश्य करनी चाहिए कि कोई व्यक्ति स्वधर्म का उल्लंघन न करें।

चंद्रगुप्त : आपके आशीर्वाद से मैं आपके उद्‌देश्य की पूर्ति में अवश्य सहायक हो सकूंगा, आचार्य।

दूसरा दृश्य

स्थान : उपवन

समय : रात।

(दृश्य में चंद्रगुप्त और मदनिका।)

चंद्रगुप्त : पश्चिम में युद्ध के बादल फिर दिखाई पड़ रहे हैं। सेल्यूकस की यवन सेना को परास्त करना ही होगा।

मदनिका : क्या आपके वहां गये बिना काम नहीं चलेगा ?

चंद्रगुप्त : (सहसा) लगता है कोई मुझे पुकार रहा है। यह तो आचार्य की आवाज है।

(चाणक्य का प्रवेश। चंद्रगुप्त और मदनिका को अभिवादन करना।)

चाणक्य : चंद्रगुप्त, तुम्हें सेल्यूकस की यवन सेना को परास्त करना है। तुम्हें अभी यहां से जाना है।

मदनिका : रात्रि के इस समय ?

चाणक्य : प्रणय को कर्त्तव्य से अधिक महत्व न दो, मदनिका!

म्दनिका : सेल्यूकस की शक्ति ऐसी नहीं है कि इन्हें जाने की आवश्यकता हो।

चाणक्य : सेल्यूकस की शक्ति को कम न समझो। अलक्षेंद्र के विशाल साम्राज्य के बड़े भाग का वही अधिपति है। वह न केवल वीर है, अपितु कुशल सेनानायक भी है। उसे परास्त करने के लिए चंद्रगुप्त को स्वयं सिंधुतट पर जाना होगा।

मदनिका : क्या सेल्यूकस की बेटी कार्नोलिया यहां गुप्तचर के रूप में कार्यरत है ?

चाणक्य : राजनीति में तुम्हारी गति है, पर राजनीति के कुछ ऐसे मर्म हैं जिन्हें तुम लोग नहीं जान सकते।

चंद्रगुप्त : क्या हमें कभी शांति और सुख के दिन देखने को नहीं मिलेंगे, आचार्य ?

चाणक्य : राजा के लिए युद्ध में ही सुख है, शत्रु को परास्त करने में ही उसकी शांति है।

मदनिका : तो मैं भी सम्राट के साथ सिंधुतट पर जाऊंगी आचार्य!

चाणक्य : नहीं, अब तुम्हारा प्रणय उस दशा तक पहुंच गया है, ज बवह निर्बलता का कारण बन जाता है। तुम्हें यहीं पाटलिपुत्र में रहना होगा और चंद्रगुप्त के वापस लौटने की प्रतीक्षा करनी होगी।

मदनिका : आचार्य!

चाणक्य : मदनिका, यह मेरी आज्ञा है।

मदनिका : आपकी आज्ञा शिरोधार्य है, आचार्य!

चंद्रगुप्त : क्या मैं एक मुहूर्त मदनिका से मिल सकता हूं, आचार्य ?

(चाणक्य का एक ओर खड़ा रह जाना।)

चंद्रगुप्त : न जाने क्यों आज मेरा चित्त उदास हो रहा है। मुझे ऐसा अनुभव हो रहा है, मानो कोई अदृश्य छाया मुझे तुमसे अलग कर रही है।

मदनिका : अपने मन में क्लैव्य को स्थान न दीजिए, सम्राट। आप शीघ्र ही सेल्यूकस को पराजित कर पाटलिपुत्र लौटेंगे। यह विशाल नगरी आपके स्वागत के लिए सजी होगी।

(चंद्रगुप्त मदनिका का आलिंगन करने जा रहा था, उसी क्षण बीच में)

चाणक्य : सावधान! स्ेना की विजययात्रा का मूहूर्त आ गया है, चंद्रगुप्त! सेना तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है।

(चंद्रगुप्त का जाना, मदनिका शून्य में देखती रह जाती है।)

चाणक्य : बेटी, वियोग से दुःख तो होता ही है। पर क्या कर्तव्य प्रेम से ऊंचा नहीं है ?

(मदनिका चाणक्य को देखती रह जाती है।)

चाणक्य : तुम्हारे जैसी पुत्री पाकर मेरा हृदय गर्व से परिपूर्ण हो जाता है।

तीसरा दृश्य

स्थान : पाटलिपुत्र का राजमार्ग।

समय : दोपहर।

(पृष्ठभूमि में विजेता चंद्रगुप्त के सम्मान में विजयोत्सव। हाथ में पुष्प–हार लिए मदनिका दौड़ी हुई आती है, दूसरी ओर से चाणक्य आकर उसे रोकते हैं।)

मदनिका : यवन सेना परास्त हो गई, आचार्य। सेल्यूकस बंदी बना लिया गया। विजेता चंद्रगुप्त पाटलिपुत्र पधार रहे हैं।

चाणक्य : असली विजेता तो तू ही है। फिलिप्स की हत्या तूने की। नंदकुल के विनाश में तेरा अनन्य सहयोग है। जो चंद्रगुप्त यवन सेना का विनाश करने में समर्थ हुआ, वह तुझसे ही बल पाकर।

मदनिका : चंद्रगुप्त अद्वितीय वीर हैं। (चाणक्य का गंभीर मुख देखकर) आचार्य, आप कुछ चिंतित हैं।

चाणक्य : आर्यजाति के समान यवन लोग भी वीर है। उनका मूलोच्छेद कर सकना संभव नहीं है। उनके आक्रमण का भय सदा बना रहेगा।

मदनिका : इस भय को मिटाने के लिए मैं कुछ कर सकती हूं ?

चाणक्य : इसके लिए हमें उनके साथ एक ऐसी संधि करनी होगी, जिससे आर्यों और यवनों की मैत्री चिरस्थायी रहे। बेटी, मैं तुमसे भीख मांगने आया हूं कि सेल्यूकस की कन्या कुमारी कार्नेलिया से चंद्रगुप्त का विवाह कर दिया जाए। मैं तुम्हारी बलि चाहता हूं, तुम्हारे प्रेम की बलि।

मदनिका : प्रेम की बलि ?

चाणक्य : चंद्रगुप्त के प्रति तुम्हारा जो प्रेम है, उसे तुम्हें भारत–भूमि के लिए बलि देना होगा।

(मदनिका का मूर्छित हो जाना। चाणक्य का उसे संभालना। चंद्रगुप्त का प्रवेश।)

चंद्रगुप्त : मैं क्या सुन रहा हूं, आचार्य ?

चाणक्य : वत्स, जो कुछ तुमने सुना है वह ध्रुव–सत्य है। मंत्रि–परिषद् का निर्णय अंतिम है।

चंद्रगुप्त : मैं कार्नेलिया के साथ विवाह नहीं करूंगा, आचार्य।

चाणक्य : तुम्हें उसके साथ ही विवाह करना होगा।

चंद्रगुप्त : मेरा मगध के राजसिंहासन पर बैठना निरर्थक है, आचार्य। मैं दास होकर सम्राट का पद ग्रहण नहीं करना चाहता।

चाणक्य : शांत हो जाओ, वत्स। आर्य–परंपरानुसार सम्राट का न कोई व्यक्तिगत जीवन होता है, न कोई व्यक्तिगत इच्छा। प्रजा का हित और कल्याण ही उसका जीवन है, और प्रजा की इच्छा ही उसकी इच्छा है।

चंद्रगुप्त : मदनिका के लिए मैं सम्राट का पद त्याग दूंगा, आचार्य।

(मदनिका इस बीच सावधान होकर गुरू–शिष्य को देख रही थी।)

मदनिका : नहीं, चन्द्र। तुम्हें यह अनर्थ नहीं करना होगा। भारत–भूमि का हित इसी में है कि तुम पाटलिपुत्र के राजसिंहासन पर आरूढ़ रहो। इस कर्तव्य के सामने हमें अपने प्रणय का बलिदान करना होगा।

चंद्रगुप्त : मदनिका!

मदनिका : जो गौरव बलिदान में है वह और कहीं नहीं है। (चाणक्य से) क्या आप मेरे दुःख को सह सकेंगे आचार्य ? मैं आपकी पुत्री हूं।

चाणक्य : मैं जीवन–भर तिल–तिलकर जलता रहूंगा। तेरा दुःख मुझसे सहा नहीं जाएगा।

चंद्रगुप्त : तो क्यों नहीं मैं राजसिंहासन का परित्याग कर दूं? हमें राजपाट नहीं चाहिए, आचार्य।

चाणक्य : तुम बलिदान की महिमा को पहचानो, चंद्रगुप्त।

(सन्नाटा छा जाता है।)

मदनिका : मुझे पहले ही इसकी आशंका थी, सम्राट।

चंद्रगुप्त : सम्राट कहकर मुझे लज्जित न करो।

चाणक्य : तुम्हें भारत–भूमि के उत्कर्ष के लिए यवन–कुमारी से प्रेम करना ही होगा, चंद्रगुप्त।

(चंद्रगुप्त चुप रह जाता है।)

मदनिका : मेरे हृदय–सम्राट, एक दिन मैंने योगिनी का भेष बनाकर राजा नंद के अंतःपुर में प्रवेश किया था, मां के अपमान का बदला लेने के लिए। अब मैं योगिनी बनकर ही जीवन के शेष दिन बिताऊंगी। कभी यवन–कुमारी को भी अपने साथ ले आना। मैं उसे आशीर्वाद दूंगी।

चाणक्य : ऐसी वीर बेटी से पिता कैसे अलग हो सकता है ? चंद्रगुप्त, मैं तुम्हें आमात्य राक्षस के हाथों में छोड़े जा रहा हूं। उनको गुरू मानना। चलो बेटी।

(मदनिका के साथ चाणक्य का चला जाना।)

चंद्रगुप्त : यह गुरू है। इसके लिए न धन–वैभव का कोई मूल्य है, न राजशक्ति का। ज्ञान ही एकमात्र संपत्ति है ओर त्याग ही एकमात्र बल।

चौथा दृश्य

स्थान : पाटलिपुत्र का उद्यान।

समय : संध्या।

(कार्नेलिया के साथ माहालि।)

कार्नेलिया : मैं उन्हें चंद्र कहकर पुकारूंगी। तुम मुझे चाहे जो कहना, पर चंद्र बनकर मेरे अंधकार का नाश करने के लिए कुछ भी करना। तुम मेरे हो, यह नहीं कहती, पर मैं तुम्हारी हूं। मुझे देना है, केवल देना।

माहालि : क्या देना है, राजकुमारी ?

कार्नेलिया : जो इस पवित्र भूमि से पाया है।

(माहालि वहीं खड़ा रह जाता है। कार्नेलिया कुछ गुनगुनाती हुई दूर चली जाती है। चन्द्रगुप्त आकर उसके सामने मूर्तिवत् खड़ा रह जाता है।)

कार्नेलिया : तुम!

चंद्रगुप्त : तुम!

(कार्नेलिया उसके चरण–स्पर्श के लिए झुकती है। चंद्रगुप्त उसे बांहों में भर लेता है। माहालि चुपचाप हट जाता है।

चंद्रगुप्त : तुम्हें कहां–कहां ढूंढ़ता रहा !

कार्नेलिया : तुम मेरे लिए सर्वत्र थे। इस सृष्टि के कण–कण में।

चंद्रगुप्त : तुम्हारे बिना अब मेरा कोई नहीं।

कार्नेलिया : मेरे चंद्र!

चंद्रगुप्त : मेरे स्वार्थ की बात तो दूर, यदि धर्म की बाधा भी हमें सुखी करने में बाधक बने, तो मैं उसे भी छोड़ने में न चूकूंगा।

कार्नेलिया : हम एक–दूसरे की मुक्ति में सहायक हों।

(अचानक दौड़ता हुआ राक्षस आता है। उसे देखकर जैसे ही चंद्रगुप्त उसकी ओर बढ़ता है, वह उलटी दिशा में भाग निकलता है। दोनों उसके पीछे जाते हैं। कुछ ही क्षणों में भागता हुआ राक्षस फिर आता है। अकेला।)

राक्षस : मैं किस मुख से सम्राट चंद्रगुप्त के सामने होऊं ? नहीं। नहीं। (सहसा) यह कौन है? मेरा मित्र चंदनदास! लेग इसे फांसी देने आ रहे हैं। यह अन्याय है। मैं इसकी रक्षा करूंगा। यह मेरे लिए प्राण दे सकता है, तो मैं भी अपने मित्र के लिए प्राणों की बाजी लगा दूंगा।

(लोग चंदनदास को फांसी देने की तैयारी में हैं।)

राक्षस : मेरे मित्र को फांसी देने का अधिकार चंद्रगुप्त को नहीं।

(चाणक्य आते हैं।)

चाणक्य : यह क्या? यह क्या खेल हो रहा है ? अभी तक फांसी नहीं दी गई ?

राक्षस : कहां है, चंद्रगुप्त ? बुलाओ उसे। मैं यह अन्याय नहीं होने दूंगा।

चाणक्य : मेरी आज्ञा से राजद्रोही को फांसी दी जा रही है।

राक्षस : मित्रता राजद्रोह नहीं है, आमात्य चाणक्य! मेरा नाम राक्षस है। यह मेरा परम मित्र है।

चाणक्य : ओह, आप हैं कूटनीति विशारद, मगध के महामात्य राक्षस! कहिए क्या आज्ञा है?

राक्षस : मेरे मित्र को फांसी मत दो।

चाणक्य : किन्तु यह तो राज्याज्ञा है। अब इसमें परिवर्तन करना असम्भव है।

राक्षस : कोई उपाय नहीं ?

चाणक्य : केवल एक उपाय है। आप सम्राट चंद्रगुप्त को अपनी सेवायें अर्पित करें।

राक्षस : असम्भव! मैं अपने स्वामी नंद के हत्यारे का पक्ष कभी नहीं ले सकता।

चाणक्य : आमात्य राक्षस! आचार्य हैं आप, अब भी ऐसी बातें सोचते हैं ? मैं नहीं समझता कि स्वामिभक्ति देशभक्ति से बढ़कर है। आप विचारशील हैं। सोचें, मेरा नंद–वंश के विनाश में कौन–सा स्वार्थ था ? नंद ने देश की क्या भलाई की ?

राक्षस : नंद मगध का शासक था।

चाणकय : केवल मगध देश नहीं है। लिच्छवि, मल्ल, मालव, सिंधु, पांचाल, पारस, कुलूत, मलय, किरात, कांबोज, वाहलीक इस देश के अलग–अलग दुकड़े थे। इन सबको मिलाकर अब एक देश हुआ है–आर्यावर्त! भारतमाता! हम सब मिलकर इसे प्रणाम करें!

(सिंहरण, माहालि, बंधुल, चंद्रगुप्त, कार्नेलिया, सिंधुतरी आदि आते हैं। प्रणाम करते हैं।)

चाणक्य : (परिचय कराता है।) यह हैं मालव कुमार सिंहरण, यह हैं लिच्छवि कुमार माहालि, यह हैं मल्लकुमार बंधुल, यह हैं सिंधुकुमारी सिंधुतरी, यह हैं सम्राट चंद्रगुप्त, यह हैं सम्राज्ञी कार्नेलिया।

(दूसरी ओर से मदनिका, चंदनदास, शकटदास, प्रियंवदक, सारंग और नगर के लोग आते हैं।)

चाणक्य : यह सब मेरा परिवेश है। इसी के भीतर से जाना मैं क्या हूं। इसी ने मुझसे रचना की। सब मेरे शिष्य हैं। सारे शिष्य मेरे गुरू हैं। जीवन के गहरे जल में डूब–डूबकर इसे पाने के लिए एक से अनेक जन्म लेने पड़े–विष्णुगुप्त, कौटिल्य, चाणक्य, वात्स्यायन, द्रुमिल।

(चाणक्य बढ़कर राक्षस के चरणों में झुकते हैं। महामंत्री राक्षस उन्हें बांहों में भर लेते हैं।

चाणक्य : (अपना शस्त्र देते हुए) यह शस्त्र ग्रहण करें और देश–हित के लिए अपना करणीय करें।

(राक्षस उसे अपने माथे लगाकर चंद्रगुप्त के सामने नतशिर होते हैं। चंद्रगुप्त उन्हें अंक से लगा लेता है।)

चाणक्य : आर्यावर्त की मर्यादा तुम सबके हाथों में है। तुम सब सफल होवो।

चंद्रगुप्त : आपके आशीर्वाद से हम आपके उद्‌देश्य की पूर्ति में सदा सहायक होंगे।

(चाणक्य के साथ मदनिका का जाना। सब लोग देखते रह जाते हैं।)

(परदा)

प्रश्न और अभ्यास

विषय–वस्तुगत

1. 'अरूण कमल एक' की कहानी अपने शब्दों मे लिखो।
2. 'अरूण कमल एक' इस वाक्यांश के महत्व को समझाओ।
3. अपनी भाषा में लिखो कि इस नाटक का नाम 'अरूण कमल एक' क्यों रखा गया?
4. 'अरूण कमल' के महत्व पर अपने विचार लिखो।
5. इस नाटक का विषय क्या है, समझाकर लिखो।

चरित्रगत

1. इस नाटक में चाणक्य के चरित्र का क्या महत्व है, समझाकर लिखो।
2. चाणक्य की चरित्रगत विशेषताओं को अपने शब्दों में लिखो।
3. तुम्हारी राय में इस नाटक का नायक कौन है और क्यों ?
4. चाणक्य और चंद्रगुप्त के चरित्रों का तुलनात्मक विवेचन करो।
5. शकटार के चरित्र का महत्व बताओ।
6. चाणक्य की दृष्टि में मदनिका इतनी महत्वपूर्ण स्त्री क्यों है ?
7. कार्नेलिया और मदनिका के चरित्र की तुलना करो।

शिल्पगत

1. इस नाटक की भाषा और संवाद–शैली पर प्रकाश डालो।
2. इस नाटक के दृश्य विधान की समीक्षा करो।
3. अंक और दृश्य का अंतर समझाकर लिखो।
4. इस नाटक की कथावस्तु का निर्माण कैसे किया गया है इसे समझाकर लिखो।
5. ''राज्य में राजा ता ध्वजा मात्र होता है'' , इस कथन के प्रकाश में इस नाटक की समीक्षा करो।
6. ''राज्य–धर्म'' और ''आर्य–धर्म'' दोनों में क्या अंतर है, समझाकर लिखो।

नई प्रणाली के प्रश्न और अभ्यास

चाणक्य : वह विद्या किस काम की जो अर्थकरी न हो, वह ज्ञान निरर्थक है जो विमुक्ति न दे। इसलिए अब वह समय आ गया है, तुम अपने पोथी पत्रों को संभाल कर रख दो और आर्य भूमि पर शासन कर रही विदेशी यवन शक्ति से युद्ध करने के लिए निकल पड़ो। हमारी आपस की फूट और निर्बलता के कारण ही इस देश के लोग दास जीवन व्यतीत करने के लिए विवश हुए। पर स्मरण रखो, आर्य कभी दास बनकर नहीं रह सकते। उठो, संकल्प लो, हम यवनों को वाहीक देश से बाहर निकाल देंगे और इस आर्यावर्त के गौरव की पुनः स्थापना करेंगे।

1. ऊपर दिए गए उद्धरण को ध्यान से पढ़ने के बाद निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दो :

क. यह किस अंक के किस दृश्य से उद्धत है ? चाणक्य यह सब किससे कह रहे हैं ? क्यों कह रहे हैं और किस समय कह रहे हैं ? 3

ख. उद्धरण में रेखांकित वाक्यांशो की सरल व्याख्या करो। केवल दो–दो वाक्यों में अपने उत्तर लिखो। 10

ग. चाणक्य के इस कथन का उद्‌देश्य क्या है ? 2

घ. इस कथन से वक्ता के चरित्र का कौन सा पक्ष उजागर होता है ? 5

ड. जिनसे यह सब कहा गया है उनकी प्रतिक्रिया क्या होती है, चार–पॉच वाक्यों में समझाकर लिखो। 5

2. निम्नलिखित शब्दों के अर्थ लिखकर उन्हें अपने वाक्यों में प्रयुक्त करो :
संकल्प, विमुक्ति, विरूद्ध, प्रकोप, संचालन, हावभाव, आकर्षण, बंधन, आमात्य, प्रतिनिधि।

3. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर पांच–पांच वाक्यों में दो :

क. इस नाटक का प्रथम अंक इतना महत्वपूर्ण क्यों है ?

ख. दूसरे अंक में इतने सारे अंकों की आवश्यकता क्या है ?

ग. मदनिका और चन्द्रगुप्त का क्या संबंध है ?

घ. प्रियंवदक के नाम का क्या महत्व है ?

ड. ''मॉ का प्रेम अधिक प्रबल है या राजसिंहासन प्राप्त करने की अभिलाषा ?'' यह वाक्य किसने, किस संदर्भ में तथा किससे कहा ?

4. 'अरूण कमल एक' ऐतिहासिक नाटक होते हुए भी संपूर्ण रूप से मंच का नाटक है। इस कथन की पुष्टि करो।